गोरक्षा कल्पतरु

[गांधीजीकृत प्रस्तावना सहित]

लेखक

वालजी गोविन्दजी देसाइ

[मूल गुजराती का अनुवाद]

धात्र्यः सर्वस्य लोकस्य गावो मातेव सर्वदा ।
अन्नदा विश्वलोकस्य तासां पुत्रा महाबलाः ॥

गोसेवा संघ

साबरमती

मुद्रक अने प्रकाशक:
मोहनलाल मगनलाल भट्ट, नवजीवन मुद्रणालय,
सारंगपुर, सरखीगरानी वाडी, अहमदाबाद.

प्रथमावृत्ति प्रत १,१००

छ आना

सं. १९८५

शिरछत्र तीर्थस्वरूप मातुश्री
सन्तोकबाईने
चरणे

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ में लेखों का जो संग्रह किया गया है, प्रत्येक गोसेवक को मनन करने योग्य है। भाइ वालजी देसाइ ने मूल लेखों की तैयारी में ठीक परिश्रम किया है। गोरक्षा बगैर परिश्रम, बगैर अभ्यास, बगैर तपश्चर्या होना असंभव है। इन लेखों से सिद्ध होता है कि यदि हिन्दू जनता दुग्धालय और चर्मालय बनाकर और गोवंशवृद्धि के शास्त्र का उपयोग कर अपने धर्म का पालन नहीं करेगी तो न गोरक्षा होगी, न हिन्दू जनता अन्त में जी सकेगी। गोवध से उन्हें रोकने के लिये मुसल्मानों से लडाई करना गोसेवक का हरगिज धर्म नहीं है।

सं. १९८३ भाद्रपद शु. ८
मद्रास

मोहनदास करमचंद गांधी

अनुक्रमणिका

वर्त्तमानचर्चा

पशुवध—कारण और निवारण इ०

आदिपर्व

परिशिष्टपर्व

वर्त्तमानचर्चा

पशुवध

कारण और निवारण

१

खाल की कथा

मुख्यतः चमडे के लिए पशुवध होता है। चमडे का बाजार ज्यों ज्यों तेज होता जायगा त्यों त्यों पशुओं का वध भी बढता जायगा।

पंजाब के बोर्ड आफ इकोनोमिक इंक्वायरी ने पंडित शिवदत्तजी का लाहोर के दूध के सम्बन्ध में एक उत्तम निबन्ध प्रकाशित किया है। उसमें से नीचे दी हुई सूची ली गयी है। उसमें गाय के चमडे के भाव की और उसके वध की तुलना की गयी है।

वर्ष	लाहोर में गाय के चमडे का भाव	गाय और उसके बछडों का वध
१९१५	रु. ३७॥)	६,९३५
१९१६	४०॥)	८,०२२
१९१७	अंक अप्राप्य है	...
१९१८	३६)	६,४६५
१९१९	३४)	९,५०५
१९२०	३९)	७,९५२

इन अंकों का विवेचन करते हुए श्री शिवदत्तजी लिखते हैं—

"यह प्रतीत होता है कि गाय के चमडे के भाव में और उनके वध में कोई सीधा संबंध है। १९१९ में उनका वध इसलिए बढा था कि उस साल अमेरिका में गायों के चमडे बहुत महँगे थे और यहां अकाल पडने से चारा न मिलता था और ढोर बडे सस्ते हो गये थे।"

मारे हुए ढोरों का चमडा ज्यादातर हिन्दुस्तान में ही कमाया जाता है और उससे बनाये हुए जूते आज हमलोग पहनते हैं। इसलिए दयाधर्म को माननेवाले सभी लोगों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे कारखाने स्थापन करें जिनमें केवल मरे हुए ढोरों की खाल कमायी जाया करे। और दयावान् धर्मात्मा व्यापारियों को तो यह उद्योग अवश्य ही करना चाहिए कि ऐसे जूते काफी संख्यामें तय्यार हुआ करें जिनमें गऊ की हत्या का दोष न लगा हो। मरे हुए ढोरों के चमडे की रक्षा की जाय और उसको काम में लाया जाय तो फिर केवल चमडे के लिए उनकी जो हत्या होती है वह फौरन ही बन्द हो जायगी।

इसके अलावा करोडों रुपये का चमडा विदेशों में भेजा जाता है और इसको 'दयालु' अँगरेज सरकार की उल्टी राजनीति मदद करती है। संयुक्त प्रान्त के उद्योग धंधे के अधिकारी मि. सिल्वर ने १९१२ में व्याख्यान देते हुए कहा था—

"क्या कभी आपने यह देखा है कि कच्चा माल विदेशों में भेजनेवाले व्यापारियों को मदद करने के लिए ही रेल्वे अपना भाडा ठहराती है। 'रेल्वे गुड्झ् टेरिफ' नामक मनुष्य को उलझन में डाल देनेवाली पुस्तकें पढोगे तो मालूम होगा कि

देश के अन्तःप्रदेश में से समुद्र किनारे तक यहां की पैदावार ले जाने के लिए रेल्वे खास तौर पर कम भाडा लेती है। इसका परिणाम यह होता है कि कच्चा माल सस्ते में परदेश चला जाता है और परदेशी की मदद करता है। रेल्वे की इस नीति के कारण अक्सर यह होता है कि हमलोग अपने कच्चे माल को लेकर कोई कारबार या उद्योग नहीं बढा सकते। हमारे देश के मजदूरों के हाथों में से इतना काम व्यर्थ निकल जाता है और कारबार में जो आर्थिक लाभ हो सकता, वह लाभ भी हमारे हाथ नहीं आता।"

बाबू विक्रमादित्य सिंह ने कानपुर में भारतीय उद्योग व्यवसाय के कमीशन* के सामने अपना इजहार देते हुए कहा था—

"कच्चा चमडा यदि दिल्ली या कानपुर से हवडा ले जाना हो तो रेल्वे क्रमशः एक मन पर साढे सात आना और सवा पांच आना किराया लेती है लेकिन यदि दिल्ली से कानपुर लाना हो तो केवल २७१ मील की ही दूरी के लिए पांच आना आठ पाई भाडा लेती है। दिल्ली या कानपुर से हवडा ले जाने के लिए १०० मील पर ९ पाई लेती है और दिल्ली से कानपुर ले जाने के लिए ३६ मील पर ९ पाई लेती है। कानपुर से हवडा ६३३ मील है, फिर भी किराया सवापांच आने और दिल्ली से कानपुर २७१ मील है, फिर भी किराया पांच आने आठ पाई है। चमडे इस देश में ही कमाये जायँ और इस देश के भूखों मरनेवाले लोगों को रोजी मिलने लगे, इस सुभीते को असंभव करने के लिये कानपुर से हवडा कमाया हुआ चमडा ले जाने के

---

* 'मिनिट्स आफ एविडेन्स' पुस्तक १, पृष्ठ २७१।

लिए एक मन पर १) रुपया किराया लिया जाता है। अर्थात् कानपुर से हवडा कच्चा चमडा ले जाना हो तो सवा पांच आने लगते हैं परन्तु कमाया हुआ चमडा उतनी ही दूर ले जाना हो तो एक रुपया लगता है।"

चमडे के संबंध में जो हाल है वही अनाज, रुई इत्यादि के बारे में भी है।

१९१९-२० में लगभग तेरह करोड रुपये की कीमत की गाय की खाल संख्या में १ करोड और ४४ लाख, लगभग पौने दो करोड रुपये की कीमत की भैंस की खाल संख्या में सोलह लाख से भी कुछ अधिक, और ९० लाख रुपये की कीमत की बछियाबछियों की खालें, संख्या में कोई २८ लाख से भी अधिक विदेशों में भेजी गयी थीं। यह कहा जाता है कि संसार में खाल की जितनी मांग है उसका एक तिहाई हिस्सा यह अभागा हिन्दुस्तान ही पूरा करता है। संसार को खाल की ऐसी तीव्र भूख है कि उसे किसी तरह संतोष नहीं होता और भारत के करोडों पशु इस भूख की शान्ति के लिये बलि हो जाते हैं।

१८९९-१९०० में बाहर भेजी जानेवाली खाल का भाव एक हंडरवेट यानी साढे पचपन सेर पर ४०॥) था, वह १९१३-१४ में बढ कर ७३॥) हो गया था। कलकत्ते में १८९७ में दस सेर खाल की कीमत रु. ८≡)१ थी लेकिन १९०६ में उसकी कीमत रु. १६)१० हो गयी।

२

लोहू से रँगे हुए जूते (अ)

बंगाल और मध्यप्रांत में भारतीय उद्योग व्यवसाय कमिशन के सामने जो इजहार हुए थे उनमें से कुछ अवतरण पाठकों के सामने पेश कर रहा हूं। उनसे इस विषय पर बडा प्रकाश पडता है। यद्यपि हमलोग अपनी आंखें गोहत्या से बन्द कर लेते हैं और उसे देखना नहीं चाहते हैं, तो भी यह बात तो निस्सन्देह साबित हो जाती है कि जो उम्दा जूते हमलोग पहनते हैं, या हाथ में रखने के बेग जो हमलोग अभिमान से लिये लिये फिरते हैं, या कपडे रखने के बेग जिनमें हम लोग अपने कीमती कपडे, फिर चाहे वे खादी के हों विदेशी हों या मिल के बने हुए हों, रखते हैं, वे सब निर्दोष जानवरों के खून से रँगे हुए होते हैं। और यदि संसार में नीति की रक्षक कोई सरकार है तो हमें किसी न किसी दिन उसके सामने इसके लिए जवाब भी देना होगा।

(पृ. ८५, श्री दास मेनेजर नेशनल टेनरी कलकत्ता)

प्रश्न—आप कहते हैं कि आप कलकत्ते से ही चमडा खरीद लेते हैं। क्या आप यह काम भी करते हैं?

उत्तर—मैं अक्सर कसाईखानों में जाता हूँ और वहांसे खाल खरीदता हूँ।

प्र० —आप खाल खरीदने और कमाने में—चमडा तैयार करने में—भी कुशल हैं?

उ०—जब जानवर जिन्दा होते हैं उसी समय उनकी खाल खरीद लेने का कलकत्ते में रिवाज है। वे कसाईखानों में जब लाये जाते हैं उस समय मैं उन्हें देख लेता हूँ और उनमें से पसंद कर के मैं अपने लिए खाल खरीद लेता हूँ। सूखी खाल में से पसंद करना बडा ही मुश्किल काम है।

(पृ. ३४२, डा. नीलरतन सरकार)

मुझे यहां यह कहना चाहिए कि क्रोम चमडा कमाने के लिए उत्तम प्रकार की खाल की आवश्यकता होती है। कसाई-खानों में से लायी हुई खाल अधिक पसंद करने योग्य है। यदि ऐसा कोई प्रबन्ध किया जा सके कि जिससे यह निश्चय हो जाय कि जुदे जुदे कसाईखानों से जैसा चाहिए वैसा चमडा उचित परिमाण में बराबर मिलता रहेगा तो बंगाल में क्रोम चमडा कमानेवालों को बडा लाभ होगा।

(पृ. ५८७–८, खेतीबाडी के डाइरेक्टर मि. लेपटविच, मध्यप्रान्त)

प्र०—क्या आप कसाईखानों के बारे में कुछ और भी ज्यादा बतला सकेंगे? मैंने सुना है कि इस प्रान्त के कसाईखानों में कुछ विशेषताएँ हैं।

उ०—मुझे इस उद्योग के संबंध में कोई विशेष ज्ञान नहीं है फिर भी यदि मैं यह कहूँ कि अकाल के समय उसका आरंभ हुआ था तो मुझे विश्वास है कि मैं बिलकुल ठीक ही कह रहा हूँ। किसान लोग तंगी में थे और तकलीफ होने के कारण उन्होंने बहुत से जानवरों को वेंच दिया था। चालाक मुसलमान ठेकेदारों ने अपना अवसर देख लिया और उन्होंने बाकायदा अपना व्यापार शुरू कर दिया। वह इतना बढा कि उसमें उन्हें अच्छी आमदनी होने लगी और उनका यह धंधा बन गया।

उनका चमडे का व्यवसाय प्रधान व्यवसाय नहीं है। प्रधान व्यवसाय तो उनका मांस का ही है। मांस के टुकडे कर के उनको सुखा डालते हैं और लकडी के गट्ठे की तरह उनको बांध लेते हैं और फिर उसे कलकत्ते भेज देते हैं। वहां से रंगून, मलाया और कुछ तो चीन तक भेजा जाता है।

(पृ. ७३९, मि. जे. के. पीटरसन)

कलकत्ते में जो लोग आज कल चमडे का काम करते हैं वे सब बहुत कर के क्या, हमेशा ही म्युनिसिपैल्टी के कसाईखानों से पायी हुई ताजी खाल को ही कमाने का काम करते हैं।

(पृ. ७६३-४, कटक टेनेरी के श्रीयुत एम. एस. दास)

प्र०—आप कैसी खाल काम में लाते हैं, ताजी, सुखाई हुई, या संखिये से तैयार की हुई?

उ०—मैं ताजी खाल काम में लाता हूं। संखिये से तैयार की हुई खाल इस देश में नहीं मिलती।

प्र०—क्या आपने कभी नमक से तैयार की हुई खाल को आजमाया है?

उ०—हम उसको भी इस्तेमाल करते हैं।

प्र०—क्या उसमें से आप अच्छा चमडा कमा सकते हैं?

उ०—हां।

प्र०—क्या ताजी खाल की बनिस्बत नमक के साथ सुखायी हुई खाल को कमाना ज्यादा मुश्किल काम नहीं है?

उ०—कसाईखानों से मिली हुई ताजी खाल से उत्तम चमडा कमाया जा सकता है। वह अधिक मुलायम भी होता है। धूप में सुखायी खाल में बडी जोखिम उठानी पडती है क्योंकि सुखाने में कभी कभी तीन चौथाई खाल नष्ट हो जाती है।

३

लोहू से रँगे हुए जूते (आ)

हिन्दी टिकस कमीशन के सामने जो गवाह पेश हुए उनके इजहार से नीचे लिखी गवाहियां उद्धृत की गयी हैं। उन पर विवेचन करना अनावश्यक है। यदि मांसभोजन करना दोष है तो वध किये हुए जानवरों के चमडे के जूते पहनना भी उतना ही दोष गिना जाना चाहिए। क्योंकि ऐसे जूते पहननेवाले और मांसाहारी दोनों ही पशुवध को एकसा बढावा देते हैं। दयाधर्मी धनाढयों का यह परमधर्म है कि वे ऐसा प्रबन्ध करें कि लोगों को मरे हुए ढोरों के चमडे के जूते मिल सकें और वे पशुवध के पाप के भागी बनने से बच जायँ।

(पृ० २५४, सर लोगी वाटसन)

स० चमडे का बाजार क्या यहां तक हमारे कब्जे में है कि उस पर कितना ही टिकस क्यों न लगाया जाय, दूसरे देशों को हमारा चमडा खरीदना ही होगा?

ज० यह बात तो नहीं है। १९१२-१३ में और लडाई के पहले १९१४ के आरंभ में भी इस देश में केवल खाल के

लिए ढोरों का वध किया जाता था और उसके निकास पर १५) सैकडा टिकस लगाया गया होता तो भी उसके बाजार पर कोई असर न होता ।

(पृ० ३५३, मि. एल. सी. मौसल)

स० आपको जितनी चाहिए उतनी खाल मिल सकती है ?

ज० नहीं, खाल की बडी कमी है, क्योंकि वध करने में कोई लाभ नहीं रहता ।

स० लेकिन पहले तो चमड़े के लिए ढोरों का वध किया जाता था ?

ज० यही कारण था कि उस समय मांस बडा सस्ता था ।

स० अब क्या उतने जानवरों को नहीं मारा जाता ?

ज० अब बहुत थोडी हत्या की जाती है । धनवानों को मांस जितनी हत्या में मिल सके उतनी ही की जाती है ।

(पृ० ४४७, बाबू भुवनमोहन दास)

खालें आजकल जुदी जुदी जात की थोकबन्द बेची जाती हैं इसलिए हर जगह वहां के चर्मकारों को उसे खरीदने में कठिनाई होती है । क्योंकि थोकबन्द माल लेने में उन्हें जितने की आवश्यकता होती है उससे या तो उसमें अधिक टुकडे निकलते हैं या उन्हें जिस जात की खाल चाहिए उस जात की खालें उसमें नहीं मिलतीं । इसका परिणाम यह होता है कि जो कुछ थोडे कसाईखाने हैं उनका सहारा इनको मजबूरन लेना पडता है ।

(पृ० ४५०)

स० क्या आप यह मानते है कि मरे हुए ढोरों की खाल से अव्वल दर्जे का चमडा कमाया जा सकता है ?

ज० मैं यह नहीं मानता ।

स० तो क्या इसी लिए आपको बध किये हुए ढोरों की खाल की जरूरत होती है?

ज० हां, बध किये गये ढोरों की खालें अधिक कीमती होती हैं और यह बहुत करके बडे शहरों में या छावनी में मिल सकती हैं, उसके दाम पूरे उतरते है।

× × × ×

ज० निकास पर अंकुश न रहने के कारण बाजार में तेजीमन्दी बहुत होती है। आज बकरे के दो रुपये देने पडते हैं तो कल ६) देने पडेंगे। ऐसी हालत में हमारा धंधा कैसे चल सकता है?

स० निकास पर टिकस हो या न हो तो भी क्या भाव में तेजीमन्दी न होती रहेगी?

ज० टिकस हो तो तेजीमन्दी बहुत न होगी, क्योंकि अमेरिकन व्यापारी बकरे के चमडे का भाव तेज करने के पहले बहुत विचार करेंगे। इस देश में अधिकांश चमडे के लिए ही बकरों का बध किया जाता है। १९१९ में जब बकरे के चमडे का भाव तेज था तब पूर्व बंगाल में बकरों को चमडे के लिए ही मारा गया था और मांस तो लोगों ने घूरे पर फेंक दिया था। मैं पूर्व बंगाल का रहनेवाला हूँ इसलिए यह सब जानता हूँ। मेरी जान में तो उस समय बकरे का मांस एक आने का एक सेर बिकता था। ऐसी हालत में हिन्द के चर्मकारों की उन्नति कैसे हो सकती है।

स० निकास पर टिकस लगाने से भाव की तेजीमन्दी में क्यों भेद पडेगा?

ज० निकास के कारण ही तो भाव में तेजीमन्दी होती है।

स० क्या आप निकास बिल्कुल ही बन्द कराना चाहते हैं ?

ज० नहीं, मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि परदेशी हद से ज्यादा दाम न चढा दें। और निकास के ऊपर टिकस लगाने से ये लोग एक हद के भीतर रहेंगे।

(पृ. ४५३)

स० आप को क्या ऊंची किस्म की खाल की ही जरूरत होती है ?

ज० खालें दो तरह की होती हैं। गायभेंस की खाल और बकरे की खाल। बकरे की खाल ८० फी सदी ऊंचे किस्म की होती है। बकरे केवल मारे ही जाते हैं और उन्हें स्वाभाविक मौत से मरने नहीं दिया जाता, इसलिए बकरे की खाल सब ऊँचे किस्म की ही होती है।

(पृ० ५१८ नीलरतन सरकार)

स० हिन्दुस्तान में चमडा कमाने का उद्योग बढे, चमडे का भाव तेज हो और गायों का अधिक वध हो, यही न ?

ज०—हमारा चर्मकारों का इसमें अलबत्ता लाभ है

यदि पाठकों पर ये कुछ असर कर सकें तो उन्हें अखिलभारत गोरक्षामण्डल के सभ्य बनना चाहिए। यदि वे कुछ ज्यादा दे सकें तो उन्हें दान या भेंट के रूप में भी कुछ रकम भेजनी चाहिए ताकि चमडे के कारखाने की योजना पर अमल किया जा सके जिसमें केवल मृत ढोरों के चमडे को ही कमा कर तैयार किया जाय।

मो० क० गांधी]

४

लोहू हड्डी की कहानी

पंजाब में खेती विभाग के अधिकारी मि. हेमिल्टन ने १९१६ में 'बोर्ड आफ अग्रीकल्चर' के समक्ष व्याख्यान देते हुए यह कहा था, "खाल, मांस, हड्डियां, लोहू और चरबी के भाव बढ रहे हैं, इसलिए जैसे जैसे दिन गुजरते जाते हैं मरी भैंस का दाम जीती भैंस के दाम के बराबर होता जा रहा है।"

हाट में जाकर पैंतीस रुपये में खरीदी हुई दो भैंसों के बध से कितना लाभ हो सकता है, उसके अंक विजागापटम के एक माला ने मि. सेम्पसन को दिये थे, वे नीचे दिये जाते हैं:

	रु. आ. पा.		रु. आ. पा.	
खाल २	१६)	से	२०)	तक
चरबी ३-४ मन (स्थानिक) ५) मन के भाव से	१५)	से	२०)	तक
सींग आधा मन (स्थानिक)	२)	से	२॥)	तक
हड्डियाँ	०।)	से	०॥)	तक
	३३।)	से	४३)	तक

मि. सेम्पसन कहते हैं कि इसके अलावा मांस के दाम जो मिलेंगे वह अलग ही होंगे।

दूसरे सब कारणों से अधिक पशुवध पर खाल के बाजार भाव का प्रभाव पडता है। उससे कम प्रभाव, सुखाये हुए मांस (जिसे बिल्टांग कहते हैं), चरबी, हड्डियां और लोहू इत्यादि वस्तुओं के भाव का पडता है।

कसाईखानों में लोहू को पका कर उसकी बुकनी सी तैयार की जाती है। वह आसाम में चाय या काफी के खेतों में खाद की तौर पर काम में लायी जाती है और जो बाकी बचती है वह विदेशों को भेजी जाती है। १९२२ में २२,४०० मन लोहू की बुकनी सीलोन को भेजी गयी थी। लोहू की बुकनी योरप में भी भेजी जाती है और वहां उससे आल्बुमन, खाद के पदार्थ और पोटाशियम सायनाइड बनाने का काम लिया जाता है।

पशुओं के पैरों को पका कर उसमें से तेल निकाला जाता है और वह घडियों में और दूसरे यंत्रों में लगाया जाता है।

चमडे के छोटे छोटे टुकडे, पुराने जूते, हड्डियां और आंतों इत्यादि से सरेस बनाया जाता है।

सींग से बटन, छुरी और छाते की बेंट, ग्लास, भांति भांति के चम्मच, इत्यादि बनाये जाते है। सींग के कारखानों में उसका जो बुरादा तैयार होता है उसका खाद बनाया जाता है। १९१२-१३ के लगभग पचीस लाख रुपये की कीमत की हड्डियाँ कोई १,४०,००० मन के करीब विदेशों को भेजी गयी थी। मि. (अब सर) अतुल चैटर्जी ने संयुक्त प्रान्त के उद्योग व्यवसाय के विषय में एक पुस्तक लिखी है। उसमें वे कहते हैं, "कंघियां बनाने में भैंस की सींगों का ही उपयोग किया जाता है। गाय की सींग बडी सख्त होती है इसलिए उसमें उसका उपयोग नहीं करते हैं। कसाईखानेवाले कसाइयों से सींग लेते हैं, उसकी नोक काट लेते हैं और ये नोकें योरप भेजी जाती हैं। वहां उनसे छुरी या छत्री की बेंटें, बटन इत्यादि बनाये जाते हैं।" "जर्मनी में अपने घरों में सादे ओजारों से ही काम करनेवाले कारीगर सींग से कागज काटने की छुरी, चम्मच,

इत्यादि कई चीजें बनाते हैं। उसका एक छोटे से छोटा टुकडा भी वे व्यर्थ नहीं जाने देते। दूसरे किसी भी काम में न आ सके, ऐसा जो भाग बच जाता है, उसकी खाद बनायी जाती है।"
(आल्मा लतीफी कृत इण्डस्ट्रियल पंजाब पृ. १२३-४)

खुरों से भी बटन, छुरी और चाकुओं की बेंटें इत्यादि बनायी जाती हैं और उसकी खाद भी तैयार किया जाती है।

हड्डियों से बटन इत्यादि तो बनते ही हैं, उनके अलावा उसमें सैकडे में ५० हिस्सा फौस्फेट, १२ हिस्सा चरबी और २५ हिस्सा सरेस की जाति के पदार्थ भी होते हैं। इसलिए उसके फौस्फेट से खाद बनायी जाती है, चरबी से साबुन, मोमबत्ती और ग्लीसरीन बनाये जाते हैं, और सरेस की जाति के पदार्थ से जिलेटिन और ग्लू तैयार किये जाते हैं। मुरब्बा तैयार करने में और दवा की गोलियां एक दूसरे के साथ चिपक न जाय और स्वादरहित बनें इसलिए उसमें जिलेटिन का उपयोग किया जाता है। ग्लू कपडे में मांडी के तौर पर लगाया जाता है और उससे छापेखाने में रौलर भरे जाते हैं। हड्डियों को पीस कर उनके आटे से खाद तैयार की जाती है। हड्डियों का शोधन करने पर उसमें से ६१ प्रति सैकडा हड्डियों का कोयला निकलता है और वह बडा रंगनाशक होता है। कच्ची शक्कर को शुद्ध करने में उसका उपयोग किया जाता है। हड्डियों से ६ प्रति सैकडा टार प्राप्त किया जाता है। उसपर फिर रासायनिक क्रिया करने पर उससे हड्डियों का तेल निकलता है जिसे कारखानों में जलाने के काम में लाते हैं। उसीसे हड्डियों का तार निकलता है जो काला बार्निस बनाने के काम में आता है। हड्डियों से २० प्रति सैकडा उसकी वायु तैयार होती है,

उसका यंत्र चलाने में उपयोग होता है और १३ प्रति सैकडा एमोनियेकल लिकर निकलता है जिससे एमोनियम सल्फेट नामक क्षार का खाद तैयार किया जाता है।

१९२१ में ब्रिटिश हिन्दुस्तान में हड्डियां पीसने की १९ मिलें थीं, ४ बम्बई प्रान्त में, ८ बंगाल में, ३ मद्रास में, २ मध्य-प्रान्त में और एक ब्रह्मदेश में और एक संयुक्त प्रान्त में। १९२१-२२ में इस प्रकार उसका निकास हुआ था —

	मन
कुचली हुई हड्डियाँ	१०,८९,७६०
हड्डियों के टुकडे	५,८५०
हड्डियों की बुकनी	१३,९६,५३०
	२४,९२,१४०

इसकी कीमत ९२ लाख रुपये से भी अधिक थी। सन् १९१२-१३ में ३०,८६,१९० मन हड्डियां भेजी गयां थीं। "पशुओं के पैरों की हड्डियां छुरी और चाकुओं की बेंटें बनाने के लिए इंग्लैंड भेजी जाती हैं। वहां उनके एक टन के ४० पौंड अर्थात् २७॥ मनके ६००) रु. अथवा मन पीछे २१॥=) रु. पैदा होते हैं। जांघ की हड्डियां बडी कीमती होती हैं। प्रति टन ८० पौंड अर्थात मन पीछे ४३।) रु. के भाव से बिकती हैं और उनसे दांतों के ब्रश के बेंटें बनायी जाती हैं। अगले पैरों की हड्डियों का भाव प्रति टन ३० पैंड है अर्थात् मन पीछे १६≶॥ है और उससे कालर-बटन, छत्री की बेंट और गहने बनाये जाते हैं। छत्री की बेंटें बहुधा भेंडों के पैरों की हड्डियों से बनाये जाते हैं" (शोर्ट कृत मेन्युअल आफ कैटिल ऐण्ड शीप पृ० ५)।

५

चरबी की कथा

चमडे, लोहू, सींग और हड्डियां इत्यादि चीजों पर विचार किया गया है। चरबी के उपयोग और दुरुपयोग का सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसका विचार स्वतन्त्र अध्याय में करना आवश्यक है। अन्त में सुखाये हुए मांस के व्यापार का भी थोडा सा विचार करेंगे।

चरबी से साबुन, मोमबत्ती और ग्लिसरीन बनायी जाती है। नीतिहीन व्यापारी अच्छी चरबी को घी के साथ मिला देते हैं। हलके प्रकार की चरबी को गाडियां भर भर के मिलों में कपडों पर चढाने के लिए काम में लाया जाता है। कुछ मिल-मालिक तो चरबी के बदले निर्दोष वस्तुओं का ही उपयोग करते हैं। क्या जैन, वैष्णव, हिन्दू नामधारी हर एक मिल-मालिक उनका अनुकरण करेंगे? क्या हम उनसे यह आशा भी न रक्खें? १९१३-१४ में टैलो, स्टीयरिन इत्यादि पदार्थ मन १४,००० विदेशों को भेजे गये थे।

पंजाब सरकार ने १९१० में उस प्रान्त के ढोर और दूध के व्यापार के विषय पर अपना एक बयान प्रकाशित किया था। उसमें लिखा गया है कि "घी में बहुत कुछ मिलावट होती है और दिल्ली के पास की कुछ जगहों में तो घी,

चरबी और दूसरे पदार्थ मिलाने का और उन्हें नियमित रूप से बंगाल में भेजने का व्यापार चल रहा है।"

मद्रास प्रान्त के ढोरों के संबन्ध में मि. सेम्पसन ने एक रिपोर्ट लिखी है। उसमें वे कहते हैः "सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि छोटा व्यापारी जब घी इकट्ठा करता है तब वह उसका चार डिब्बे से छः डिब्बा घी बनाता है। इसके लिए वह घी में कुसुम्बी अर्थात् सफेद बेरें का तैल और पशुओं की चरबी की मिलावट करता है। माला लोगों से यह चरबी व्यापारी खरीदते हैं। माला लोग ढोर के मृत शरीर से चरबी निकालते हैं। यह कहा जाता है कि जितनी मरतबा घी एक के हाथ से दूसरे व्यापारी के हाथ में जाता है, उतनी ही मरतबा उसके चार डिब्बों के ६ डिब्बे घी होता है और जब यह हाल है तब शुद्ध घी की बात चलने पर सारे प्रान्त के लोग उसके लिए बडी भारी शिकायत करें तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हर एक जिले में घी की मिलावट की और इसके महँगे होने की लोगों की शिकायत होती है।...... साउथ इण्डियन रेल्वे के जनरल ट्राफिक मैनेजर उस रेल्वे की हद में सब जगहों में इसकी जाँच करा कर कहते हैं कि करीब करीब सारी लाइन पर प्रसंगानुसार एक गांव से दूसरे गांव को थोडी थोडी चरबी भेजी जाती है और उसका चमडे कमाने इत्यादि के काम में भी उपयोग किया जाता है, परन्तु यह भी कहते हैं कि उसका एक उपयोग घी में मिलावट करने का भी होता है। उसका भाव जुदे जुदे विभागों में प्रति पौंड दो आना दस पाई से ले कर पांच आने (।-॥ प्रति सेर से ले कर ॥≈ सेर) तक का होता है।

दूध का उपयोग जैसे जैसे बढता जाता है, वैसे वैसे घी में अधिक मिलावट होती जायगी । एक विस (१ सेर ५ छटांक) घी बनाने के लिए गाय का दूध जितना आवश्यक है उतना दूध यदि ताजा ही बेच डाला जाय तो उससे ७॥) मिलेंगे। इतने दूध का मक्खन बनाने पर छाछ के अलावा ५॥।-) का मक्खन तैयार होगा और आज सब जगह घी की महँगाई की शिकायत हो रही है उस समय भी एक विस घी का २॥) रु. से अधिक नहीं लगता ।

"घी बनानेवाले जिलों में आज भी बहुत सा अच्छा घी मिल सकता है परन्तु व्यापार की वर्तमान दशा में वह बडे बडे बाजारों में नहीं पहुँच सकता । और अच्छे और बुरे घी का भाव जब एक है, तो यह देखते हुए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जितनी उसकी माँग है उतना घी पहुँचाने के लिए घी में मिलावट का होना अनिवार्य है। सबलोग यदि इतनी ही बात समझ लें तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि ऐसा होने पर सहयोगी मण्डल और ऐसी दूसरी संस्थाऐं ऐसी कुछ व्यवस्था कर सकती हैं कि आज घी में जो बिना नियम के अनेक गन्दी चीजें मिलायी जाती हैं उसके बदले शुद्ध घी में कोई हितकारक वनस्पति के तेल की मिलावट करके बेचा जाय।

हमारे पूर्वज घी को आयुष्य की उपमा देते थे (आयुर्वै घृतम् ।) और घी दूध का प्रश्न हमारे यहां तो जीवन-मरण का प्रश्न है इसलिए सुज्ञ पाठकों से यह प्रार्थना है कि वे १९१२ में मद्रास में हुई अ० भा० आरोग्य परिषद् में पढे गये डाक्टर नायर के "खाद्य-पदार्थो में मिलावट" नाम का निबंध में से निम्नलिखित अवतरण को धैर्य के साथ पढें:

"शहर में असंख्य फेरीवाले मिलावट किये हुए घी का व्यापार करते हैं। वे हमेशा सर पर एक बरतन में मिलावट किया हुआ घी रखते हैं और हाथ में टीन के डिब्बे में नमूने का शुद्ध घी रखते हैं और इस प्रकार वे लोगों को धोखा देते हैं। सामान्य तौर पर दोपहर को दस से तीन बजे के भीतर जब पुरुषवर्ग घर पर नहीं होते तभी वे दिखायी देते हैं।

"खास कर चरबी, मूंगफली और कुसुम्बी के तेल, तथा केले और आलू की मिलावट की जाती है।

"कडप्पा में और उसके आसपास रहनेवाले चमार ढोरों को और खास कर भैंस को मार कर उसकी चरबी व्यापारियों के हाथ बेचते हैं। चमार को इसमें बडा लाभ होता है। ४० रु. का पशु खरीदा हो तो उसकी चरबी, चमडा इत्यादि बेच कर वह ५०) कमाता है। इसलिए लोग पशुओं को कत्ल करने के लिए और व्यापारियों को चरबी देने के लिए बराबर तय्यार रहते हैं। यह कहा जाता है कि एक भैंस से तीन कनस्तर चरबी निकलती है। इस प्रकार व्यापारी चमारों से चरबी खरीद कर अपनी दूकान में घी के डिब्बे के पास उसका संग्रह करते हैं। म्युनिसिपैल्टी के भोजन के पदार्थों की जाँच करनेवाले अधिकारी कहते हैं कि ताडपत्री, कमलापुरम् इत्यादि स्थानों में घी की दूकानों में उन्होंने चरबी के डिब्बे देखे हैं। कडप्पा जिले में जहां जहां घी बनता है, वहां वहां कसाई की दूकानें अथवा चमडे की आढत होती है उससे जब चाहे तब व्यापारियों को चरबी मिलती है

"कडप्पा में दो प्रकार का घी मिलता है। एक पतला और दूसरा गाढा। पहले प्रकार के डिब्बे न ऊपर का भाग

प्रवाही और नीचे का जमा हुआ होता है। प्रवाही पदार्थ कुसुम्बी का तेल होता है और जमे हुए घी में चरबी और घी का मिश्रण होता है। इसलिए प्रत्येक दुकान में यदि घी देखना चाहें तो व्यापारी डिब्बे में चम्मच चला कर नीचे से जमा हुआ घी निकाल कर दिखावेगा। दूसरे प्रकार के घी में चरबी और घी की ही मिलावट होती है। पहले प्रकार का घी दूसरे प्रकार के घी से कुछ महँगा होता है क्योंकि उसमें चरबी कम और घी अधिक होता है।"

सर जॉन वुड्रोफ कलकत्ते में जब एक गोरक्षण संस्था के अध्यक्ष थे तब उन्होंने ईस्ट इण्डियन रेल्वे के एजण्ट को खर्च के १००) दे कर जगह जगह से हवडा स्टेशन पर आनेवाले सुखाये मांस के अंक प्राप्त किये थे। १९१७ में १,५०,००० मन, १९१९ में १,७५,००० और १९२० में २,००,००० मन सुखाया मांस हवडा आया था। दो ढोरों की हत्या करने पर १ मन सुखाया हुआ मांस प्राप्त होता है। इस हिसाब से २,००,००० मन मांस के लिए ४,००,००० ढोरों की हत्या हुई होगी। ब्रह्मदेश के महसूल विभाग के अधिकारी से कलकत्ते की एक दूसरी गोरक्षण संस्था ने निम्नलिखित अंक हंडरवेट (५५॥ सेर) में प्राप्त किये थे।

सन् १९१७–१८	१९१८–१९	१९१९–२०
१,१९,३५२	१,५२,१८५	१,५७,०६१

१,५०,००० हंडरवेट=२,१०,००० मन। सुखाये हुए मांस के लिए कहा जाता है कि प्रतिवर्ष ४५ लाख ढोरों का बध किया जाता है। १९१५–१६ में साढेबाईस लाख रुपये का सुखाया हुआ मांस हिन्दुस्तान से ब्रह्मदेश भेजा गया था।

सन् १९२२-२३, १९२३-२४ और १९२४-२५ में भारत से ब्रह्मदेश को जो सुखाया हुआ मांस गया था उसके अंक सर हेरोल्ड मैन की कृपा से प्राप्त हुए हैं। वे नीचे दिये गये हैं।

कहां से भेजा गया	१९२२-२३ वजन हंडरवेट	१९२२-२३ कीमत रुपया	१९२३-२४ वजन हंडरवेट	१९२३-२४ कीमत रुपया
कलकत्ता इत्यादि जगहों से	७१,६७३	१८,८९,२३६)	८०,६०३	१७,४७,७९८)
बम्बई से	१,१०६	३६,४७०)	२,८७०	८५,५२२)
	७२,७७९	१९,२५,७०६)	८३,४७३	१८,३३,३२०)

	१९२४-२५	
कलकत्ता इत्यादि जगहों से	९३,४५७	१८,५४,७६०)
बम्बई से	३,२५८	८०,५७०)
	९६,७१५	१९,३५,३३०)

६

बंगाल में पशुवध

पशुवध के सामान्य अर्थशास्त्र का अब तक हमने यहां विचार किया है। बंगाल में होनेवाले जिस पशुवध के अंकों का ज्ञान लोगों को और किसी तरह पर नहीं हो सकता, वह अंक सरकारी रिपोर्टों से यहां दे कर, हम इस अंश को समाप्त करेंगे।

प्रतिवर्ष बंगाल में मारे जानेवाले जानवरों के कुल अंक इस प्रकार हैं।

१	२	३	४	५
गायबैल	भैंस	बकरे	भेडें	सुअर
२,८३,३१४	१८,८००	५,६७,५३८	१,६२,३३९	३२,०६६

(१) राजशाही जिला

राजशाही शहर में तीन कसाईखाने हैं। गोवध २,०००; बकरे १०,०००। इसके अलावा खास कर बकर-ईद जैसे त्यौहार पर हर एक गांव में पशुवध होता है।

(२) पाबना जिला

सिराजगंज और पाबना शहर में कसाईखाने हैं परन्तु उनके अंक अप्राप्य हैं।

(३) यशोहर जिला

यशोहर में एक कसाईखाना है, वहां २१२ गायबैल और ४०० बकरों का वध होता है। गांवों के अंक प्राप्त नहीं हुए हैं।

(४) मिदनापुर जिला

मिदनापुर, खडगपुर और तामलुक में कसाईखाने हैं। कुल वधः गायबैल ४,०००; भैंस २,३४०; भेडें ९,१२५; बकरे ३०,२०० ।

(५) बोगुडा जिला

नियमित कसाईखाना नहीं है। इसलिए अंक नहीं मिल सकते हैं।

(६) खुलना जिला

कसाईखाना नहीं है। बकर-ईद जैसे अवसरों पर ही गोवध होता है और बकरों की तो हरएक गांव में हिन्दू लोग बलि देते हैं और मुसलमान कुरबानी करते हैं। लगभग ५,७३० बकरे कत्ल होते होंगे।

कलकत्ते की ग्रेहम कंपनी हड्डीसींग वगैरह लाने के वास्ते मोचिओं को भेजती है और उनको मन पर १।।।-) रु. देती है। कालीगंज के पश्चिम में पहले सींग और खुर से खिलौने बनाते थे परंतु यह उद्योग अब मृतप्राय दशा में है।

(७) कलकत्ता

पांच कसाईखाने हैं: (१) टांगडा, (२) हिन्दू, (३) लेन्सडाउन, (४) हालसी बागान (५) सुअरों का। कुल वधः गायबैल १,११,१५१; भैंस ७,२८६; बछडे १०,५२८; बकरे २,०७,९४०; भेडें १,०४,१७७; सुअरों १६,३०८ ।

कलकत्ता म्युनिसिपैल्टी के नियम के अनुसार किसीका ढोर मर जाय तो उसे तीन घण्टे में ढाप्पा पहुँचाना चाहिए। ढाप्पा पहुँचाने पर शव पर का चमडा उतारने के लिए और दूसरी क्रियाऐं करने के लिए मेसर्स शा वालेस एण्ड कंपनी ने सम्पूर्ण व्यवस्था कर रक्खी है। हड्डियों से तेल निकाल लिया जाता है। फिर उन्हें शक्कर धोने के कारखानों में या चाय के बगीचों में भेज दिया जाता है। हौग मारकेट में हड्डियां इकठ्ठा करने का ठेका म्युनिसिपैल्टी की तरफ से मेसर्स कालेंण्डर एण्ड कंपनी को मिला है। खुर और सींग के भी ठेकेदार होते हैं। कटक में सींगों का अक्सर चांदी सोने के तारों के काम में उपयोग होता है और खुर को शा वालेस एण्ड कम्पनी के ढाप्पावाले कारखाने को भेजते हैं। कसाईखानों से आंतें लेने का ठेका ए. मेयर ने लिया है और खून कालेंण्डर एण्ड कम्पनी ले जाती है और उसे गरम कर के उसकी बुकनी तैयार करती है।

(८) चट्टग्राम का पहाडी प्रदेश

लोग बौद्ध हैं इसलिए शायद ही कहीं पशुवध होता हो। लोगों को पशुओं के शव को छूने में भी आपत्ति होती है। नियमित कसाईखाना यहां नहीं है। यहां के अंक नहीं मिलते।

(९) बांकुडा जिला

बांकुडा शहर में और विष्णुपुर में कसाईखाने हैं। वहां अनुक्रम से नित्य २-४ ढोर और २-३ बकरे मारे जाते हैं। कुल बधः गायबैल १,०१५; भैंस १५०; बकरे ५,८००; भेडें १२५। बांकुडा में सींग से कंघियां बनाने का भी कुछ उद्योग होता है।

(१०) मालदा जिला

हाटखोला के अंगरेजी बाजार में दो कसाईखाने हैं, वहां २,००० बकरे और १०० गायों का बध किया जाता है। दूसरे चार स्थानों को मिला कर यहां उतने ही जानवर और कटते हैं।

(११) चट्टग्राम जिला

तेरह कसाईखाने हैं। कुल बधः गायबैल २१,१५२; भैंस ५०, बकरे १४,६००। रावझान में गोवध ६,०००। फाटिकचडी और सातकानिया में लगभग तीन तीन हजार। कोक्स बाजार में २,०००। सदर और पटिया में डेढ डेढ हजार। रणगुणिया तथा बांसखली में हजार हजार। बवालखली और अनवारा में छः छः सौ। सीताकुंड, मीरेरसराइ और हाटाजडी में अनुक्रम से ३००, ३९० और १२। हिन्दुओं के बलिदान का और मुसल्मानों की कुरबानी का इस हिसाब में समावेश नहीं होता है।

(१२) मुर्शिदाबाद जिला

पांच कसाईखाने हैं। कुल बधः गायबैल ८,३००; बकरे ७,७००। सालार में गोबध ४,०००; मुर्शिदाबाद में १,८००; बरहामपुर तथा भरतपुर में हजार हजार; तालिबपुर में ५००। बन्नेश्वर के मन्दिर में ३०० बकरे कटते हैं। कसाईखानों के हिसाब में देवालय को भी गिनाना पडता है, यह कलियुग का ही प्रभाव है।

बीरभूम से एक जाति के लोग आते हैं वे सदा फिरते रहते हैं। वे सींग के कंघियां और एक प्रकार का सरेस बनाते हैं।

(१३) बाकरगंज जिला

नियमित कसाईखाना नहीं है। गोवध १,२००; भैंस ४००; बकरे २६,०००।

(१४) माइमेनसिंह जिला

म्युनिसिपल और सांकीहरा के, इस प्रकार के दो कसाईखाने हैं। गोवध ४००; बकरे ३६,०००। बाजों के तार बनाने में आंतों का उपयोग किया जाता है।

(१५) दिनाजपुर जिला

दिनाजपुर शहर के कसाईखानों में १,८०० बकरे का बध हुआ था। दूसरे अंक नहीं मिले हैं।

(१६) दार्जिलिंग जिला

कुल बधः गायबैल १३,०३४; भैंस २,९९८; बकरे ३,७६९; भेडें ३,०००; सुअर ६,४०८। सदर में ७,५१० बैलों का वध होता है; कुर्सियोंग में ३,२२५; कालिम्पोंग में १,५४९; सिलिगुडी में ७५०।

दार्जिलिंग में हड्डियां अधिक होने के कारण वहां म्युनिसिपैल्टी ने हड्डियां पीसने का कारखाना खोला है। जो ढोर फैलनेवाले रोग के कारण नहीं मरे होते उनका मांस भुटिया और लेपचा लोग खाते हैं।

(१७) वर्धमान जिला

कुल बधः गायबैल २३,८२५; बकरे ३०,०००, भेडें २७,६१८। आसनसोल में ११,७६५ गायबैलों की हत्या होती है; सदर में ८,४ ०; कटवा २,५००; कलना ६२०।

(१८) हावडा जिला

कुल १३ कसाईखाने हैं। कुल बधः गाय ३,०५०, भैंस ४००, बकरे ३०,५१० और भेडें ४,५५०। शहर के कसाईघरों में १,६०० गायें कटती हैं; बांट्रा में ७५०; मुनशीरहाट ४००; पंचाला २००; हकोला १००।

(१९) फरीदपुर जिला

नियमित चलनेवाला कसाईखाना नहीं। बकरे ८,००० कटते हैं।

(२०) हुगली जिला

कसाईखाने: पांडुआ में, बोइंची में और हुगली-चिनसुरा म्युनिसिपल्टी का। कुल बधः गायबैल ७,८६४ (सदर ४,५००; सीरामपुर ३,३६४); बकरे ३०,०००; भेडें १२,३९२.

(२१) नदिया जिला

कुल बधः गायबैल ५५०, बकरे ५,०००; भेडें १,९००। कृष्णनगर में ५०० गाय, और शान्तिपुर में ५० गाय कटती हैं।

(२२) नवाखाली जिला

कुल बधः गायबैल ३,०००; भैंस २,०००; बकरे २,०००; भेडें १,८३६।

(२३) त्रिपुरा जिला

कुल बधः गायबैल ६,०००; भैंस २५०; बकरे १३,०००; भेडें १००। टिकरचर में २,००० और चांदपुर में ४,००० गायें कटती हैं। ब्राह्मणबारिया के अंक नहीं मिलते।

(२४) ढाका जिला

ढाका शहर में दो कसाईखाने हैं (१) साजहानपुर और (२) कसाईटोली। कुल बधः गायबैल १०,८००; बकरे ३५,००० और भेडें ५,०००। गांवों के अंक अप्राप्य हैं।

(२५) चौबीस परगना

कुल बधः गायबैल १९,९५०; भैंस २,०००; बकरे ४०,५०० भेडें ८००; सुअर ३,०००। सोनाडांगा में ५२,००० पशु कटते हैं। बेरेकपुर में २,०००, बारासात में ५०० और डायमण्ड हार्बर

में ४५० गायें कटती हैं। बडानगर और कमरहाटी के भागाड (ढोरों के अस्थिस्थान) कलकत्ते के मेसर्स शा वालेस कम्पनी को किराये पर दिये जाते हैं। सींग और खुर हड्डी आदि के चक्की-घरों में जाती हैं। खून मेसर्स कालैण्डर कम्पनी इकट्ठा करती है। आंतें सामान्यतया सरकारी कारखानों में जाती हैं, मसलन् मि० मेयर के कारखाने में।

(२६) बीरभूम जिला

कुल बधः गायबैल ८,३०५; बकरे ८,६२६; भेडें २३०।

(२७) जलपाईगुडी जिला

कुल बधः गायबैल ३,५१८; बकरे २,४६३; भेडें ३६; भैंस १,०३०; और सुअर १,८००।

(२८) रंगपुर

कुल बधः गायबैल १३,२००, बकरे ७,५००; भेडें ५००। कुडीग्राम में १३,००० और निलफामडी में २०० गायें कटती है। दूसरे छोटे विभागों के अंक अप्राप्य हैं।

इन सब अंकोंको देख कर तो सिद्धान्त रूप में यही परिणाम निकाला जा सकता है कि जबतक हम मरे हुए ढोरों को धर्म मान कर पूरे तौर पर काम में न लावेंगे और उससे उत्पन्न धन को गोरक्षा में नहीं लगावेंगे तबतक गोरक्षा होना असंभव है।

चौपायों की निकासी

हजारों की गिनती में उत्तम चौपाये दूर दूर के गांवों से बम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसे बडे शहरों में आते हैं और उसके बाद एक वर्ष में ही उनका नाश हो जाता है। इस भयंकर प्रश्न पर अभी हम विचार करनेवाले हैं, परन्तु इसके पहले पशुओं को विदेशों में भेजे जानेवाले प्रश्न पर ही बिचार कर लें।

१९१२ के पहले सरकार के रजिस्टरो में विदेश भेजे जानेवाले गायबैल और भेड बकरियां की संख्या अलग अलग नहीं लिखी जाती थी। १९१२ से जितने गायबैल विदेशों को भेजे गये उसके अंक नीचे दिये गये हैं।

वर्ष	संख्या	कीमत रुपया	एक ढोर दी औसत कीमत
१९१२-१३	३०,१८८	१५,७१,१६०	५२)
१९१३-१४	२९,९[illegible]९	१८,५८,५००	६२)
१९१४-१५	१७,७०८	९,४५,०६०	५३)
१९१५-१६	१४,२४१	६,५०,८३५	४६)
१९१६-१७	१४,६८१	८,५१,४००	५८)
१९१७-१८	९,९७७	७,२२,२०५	७२)
१९१८-१९	९,९५१	९,३१,४५५	९४)
१९१९-२०	१६,६८५	१९,१९,९१०	११५)
१९२०-२१	१९,०६५	२०,४४,६८०	१०७)
१९२१-२२	२१,१७९	१६,७४,३८२	७९)
१९२२-२३	१३,६७५	८,२८,९१२	६१)
१९२३-२४	१२,५९७	८,७८,८०४	७०)

सरकारी अधिकारी व्यापार को निरंकुश रखने के पक्षपाती हैं। इसलिए वे मवेशियों के निकास को बंद करने की या उसे कम करने की सूचना को केवल हंसी में उडा देते हैं। लेफटेनन्ट कर्नल मेट्सन के लेख में इस पक्ष का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। फिर भी यह प्रतीत होगा कि वे भी अंकुश रखने के प्रस्ताव के सर्वथा विरोधी नहीं हैं।

"मवेशियों की निकासी बन्द करना निरर्थक है। जिस देश में आवश्यकता से अधिक पशु हों वहां से उनकी निकासी को बढावा मिलना चाहिए। निकासी से कीमत बढती है। उससे मालिकों को अपने ढोरो को अच्छा खाना देने की और उनकी संतति को सुधारने का लालच और हौसला होता है और उससे परिणाम यह होता है कि देश की तमाम मवेशी अधिकाधिक अच्छी और दूध-घी देनेवाली हो जाती हैं। इसमें एक अपवाद है और वह यह है कि गायभैंसो को विदेश भेजने के कार्य पर अंकुश रखा जायगा तो उससे परिणाम में लाभ ही होगा।"

अर्थ के दास चाहे कुछ ही क्यों न कहें, परन्तु जो लोग पशु से ली हुई सेवा के थोडे बहुत बदले के रूप में वृद्ध और रोगी हो जाने पर उन्हें पालने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं, उनके हाथ से यदि एक भी मवेशी उन लोंगो के हाथ में चली जाय, जो उसे उपयोगी न होने पर फौरन ही मार डालते हैं, तो यह बडा असह्य होना चाहिए। और, कुछ लोग तो मवेशियों को दूध के लिए नहीं, परन्तु उसके मांस के लिए ही पालने को विदेशों में ले जाते हैं। इसलिए दयाधर्म को माननेवाले हम तो यही चाहेंगे कि यह खून का व्यापार सर्वथा बन्द हो जाय।

अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार करने पर भी निकासी के कारण मवेशियों का भाव इतना बढ जाता है कि उन्हें खरीदना हमारी शक्ति के बाहर की बात हो जाती है। मवेशियों का रखनेवाला शायद उससे सुखी हो सकता है परन्तु दूध और किसानों के लिए उपयोगी जानवरों की कमी होने के कारण सारे देश के दुःख की कोई सीमा न रहेगी। यदि अनाज स्वतंत्रतापूर्वक विदेशों को भेजा जायगा तो उससे अनाज पैदा करनेवाले किसान को लाभ होता हुआ अवश्य प्रतीत होगा परन्तु परिणाम में तो उससे देश को भूखों ही मरना पडेगा। यूरोप के महासमर के समय इस 'दयालु' सरकार ने भी हुल्लड हो जाने के डर से अनाज का विदेशों को भेजा जाना रोक दिया था।

"हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है। उसकी लगभग तीन-चौथाई आबादी का जीवन किसानी पर आधार रखता है। और किसानी का मुख्यतः मवेशियों पर ही आधार रहता है। इस देश में जितने चाहिए उतने मवेशी नहीं हैं और जो हैं वे दुर्बल हैं। हिन्दुस्तान में प्रति १०० मनुष्य के ५९ ढोर हैं, डेन्मार्क में ७४, युनाइटेड स्टेट्स में ७९, केनेडा में ८०, केप-कोलोनी में १२०, न्युजीलैण्ड में १५०, आस्ट्रेलिया में २५९, आर्जेन्टाइन प्रजातंत्र में ३२३, और उरुगुवाई में ५०० हैं।

"देशी बैल बहुत हुआ तो एक फसल के लिए ५ एकड जमीन जोत सकता है। ब्रिटिश भारत में तकरीबन २२,८०,००,००० एकड जमीन जोती जाती है और उसे जोतने के लिए योग्य पशु लगभग ४,९०,००,००० हैं। बोझ उठानेवाले २५ प्रति सैकडा और वृद्ध, अशक्त और रोगी २५ प्रति सैकडा घटा

देने से २२,८०,००,००० एकड जमीन जोतने के लिए २,४०,००,००० पशु बाकी रहते हैं। अर्थात् एक जोडी बैल के लिए १९ एकड जमीन का औसत पडता है परन्तु सामान्य तौर पर तो १९ एकड जमीन जोतने के लिए ४ जोडी बैल होने चाहिए। दूसरे देशों की तुलना में यहां फसल बहुत थोडी उतरती है। उसका मुख्य कारण भी यही है। ब्रिटिश भारत में प्रति एकड ११.५ बुशल (एक तरह का माप) गेहूं उत्पन्न होते हैं, फ्रान्स में १३.५, इटली में १३.७, स्पेन तथा युनाइटेड स्टेट्स में १४, केनडा में १७, स्वीडन तथा नार्वे में २३, मिश्र में २९, ग्रेट ब्रिटन में २९.८, नेधर्लेण्ड्स में ३०, जपान में ३२, स्विट्जर्लैंण्ड में ३२.५ और डेन्मार्क में ३३ बुशल गेहूं उत्पन्न होते हैं।

"यहां पशु इतने कम हैं कि भारत की आबादी के आठवें हिस्से को भी पूरा दूध नहीं पहुँचा सकते। देशी गाय सात महीने तक रोजाना औसत १। सेर के हिसाब से दूध देती है। इस हिसाब से २५,४०,००,००० मनुष्यों को ५ करोड दूध देनेवाले पशु रोजाना लगभग ३॥। करोड सेर दूध देते हैं, अर्थात् प्रति मनुष्य प्रतिदिन पूरा २॥ छटांक दूध भी नहीं पडता और सामान्य हिसाब यह है कि कम से कम प्रतिमनुष्य प्रतिदिन १। सेर दूध तो मिलना ही चाहिए।" (सर जान वुड्रोफ इत्यादि की लार्ड चेम्स्फोर्ड को लिखी अरजी से।)

बंगाल के कृषिविभाग के अधिकारी मि० ब्लेकवुड लिखते हैं। "प्रतिमनुष्य प्रतिवर्ष लगभग २० से ४० सेर दूध खर्च होता है।" अर्थात् प्रतिमनुष्य एक दिन का करीब करीब चार साढे चार तोले से लेकर से आठ नौ तोला तक दूध पडता है।

बम्बई जैसे धनिकों के शहर में भी प्रतिमनुष्य १॥ छटांक दूध खर्च होता है। युनाइटेड स्टेट्स में १० छटांक और इंग्लैंड में ५ छटांक।

युनाइटेड स्टेट्स में एक गाय से औसत १७०६ सेर दूध उत्पन्न होता है, हालैंड में ३७९२॥ सेर, स्वीट्जरलैंड में ३,४७५ सेर और डेन्मार्क में २,८३३ सेर। युनाइटेड स्टेट्स में एक वर्ष में एक गाय से औसत ७२॥ सेर मक्खन उत्पन्न होता है, डेन्मार्क में ११२ सेर और हालैण्ड में १२५ सेर। दूसरे एक और हिसाब से इस देश में एक दूध देनेवाले पशु से १ सेर दूध उत्पन्न होता है, युनाईटेड स्टेट्स में ५.१ सेर और इंग्लैंड में १० सेर।

" आईने अकबरी में लिखे अनुसार अकबर के समय में एक गाय दिन में २५ सेर दूध देती थी और घोडे से भी बैल तेज चलते थे। २५ साल पहले गायें एक दिन में औसत ५ सेर के करीब दूध देती थी और आज का औसत मुश्किल से १ सेर हो सकता है। बैल भी आज जितना काम करते हैं उससे दूना काम करते थे।

" इसका परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ जब मवेशी अनाज, दूध इत्यादि का भाव बेहद चढ गया है तब दूसरी तरफ मनुष्य, खास कर स्त्री और बालक-वर्ग, दुर्बल और रोगी बन गये हैं और मृत्यु का परिमाण भी असाधारण हो गया है। अन्तिम ६० वर्षों में जब अनाज का भाव पांच सात गुना अधिक बढा है तब दूध का भाव तो चालीस गुना अधिक बढ गया है। १८५८ में रुपये में एक मन गेहूं मिलता था और १९१८ में तो सिर्फ ५$\frac{1}{2}$ सेर का ही भाव रह गया था। परन्तु १८५७

में रुपये का जो चार मन दूध मिलता था वह १९१८ में चार सेर हो गया। अकबर के समय में २५ सेर दूध देनेवाली गाय दस रुपये में मिलती थी। २० साल पहले वह १५०) में बिकती थी परन्तु आज तो वह ४००) में भी दुर्लभ हो गयी है। सांड और बैल का भाव भी इसी प्रकार बढ गया है।" (सर जान वुड्रोफ की अरजी।)

इँग्लैंड और युनाइटेड स्टेट्स में दूसरी बहुत सी चीजों का भाव यहां के हिसाब से दुगुना या चारगुना होता है। परन्तु यहां की बनिस्बत दूध वहां बहुत ही सस्ता है। बम्बई की तुलना में वहां तेरह गुना और इंग्लैंड में बारह गुना सस्ता दूध मिलता है।

"हिन्दुस्तान में बालमृत्यु का परिमाण बडा ही भयंकर है; इँग्लैण्ड, डेन्मार्क और जपान की बनिस्बत लगभग दुगुना, स्वीडन तथा नौर्वे के बनिस्बत तिगुना, हालैण्ड और युनाइटेड स्टेट्स के बनिस्बत पांचगुना और न्यूजीलैण्ड के बनिस्बत नौगुना है। बम्बई जैसे बडे शहरों में तो दो बालकों में एक बालक तो जन्म होने के बाद उसके प्रथम वर्ष में ही मर जाता है। इस देश में बालमृत्यु का परिमाण प्रति हजार २६०.७, न्युजीलैण्ड का ३२, हालैण्ड का ५०, युनाइटेड स्टेट्स का ५८.८, स्वीडन तथा नौर्वे का १०२, डेन्मार्क का १३५, आयर्लैण्ड का १२३, स्काटलैण्ड का १४५ और इंग्लैण्ड और वेल्स का १७२ है। संयुक्त प्रान्त के आरोग्य विभाग के अधिकारी कर्नल मेकटेगर्ट ने कहा था कि 'सुशिक्षित दाई की फौज खडी करने के बनिस्बत—गरीबों को दूध सुलभ हो, इसलिए—दूध को सस्ता बनाना ही बालमृत्यु को घटाने का अधिक अच्छा मार्ग है।'" (सर ज्ञान की अर्ज़ी)

हिन्द का मृत्युपरिमाण ३८.२, न्युजीलैण्ड का ९.५, और इंग्लैण्ड का १४ से कुछ कम है। भारत की औसत उम्र २४ साल की है और इंग्लैण्ड की ४५ वर्ष की है।

"१९०२ में क्षय के रोगी ३८,४३५ रजिस्टर हुए थे। यही संख्या १९१९ में बढ कर १,००,१९२ की हो गई थी। अर्थात् २०० प्रति सैकडा संख्या बढ गयी।" (सर जान की अर्जी)

इन सब बातों का बिचार करते हुए मवेशियों की निकासी बहुत बडा अपराध है। इसके कारण उत्तम प्रकार के मवेशी बिल्कुल ही घट गये हैं। मवेशियों के पालन का उद्योग यदि सुव्यवस्थित होता और देश में उसकी अधिकता होती तो निकासी से लाभ हो सकता था। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इस माल का व्यापार करने वालों को ढोरों की सच्ची कींमत का ज्ञान नहीं होता इसलिए उनको वे आधी कीमत में ही बेच देते हैं। और वे भले ही अपने को बरबाद कर डालेंगे परन्तु नक़द रुपयों के लालच से वे अपने अच्छे से अच्छे मवेशी को भी बेच देंगे। इस प्रकार उत्तम साँढ और बहुत सी दूध देनेवाली गायों की निकासी से देश को जो आर्थिक हानि होती है. उसका कोई शुमार ही नहीं हो सकता।

८

बडे शहरों का अत्याचार

अब, बडे शहरों में पशुओं पर जो जुल्म होता है, और जिसके कारण वे अन्त में कसाई के पास पहुँच जाते हैं उसे देखिए।

सन् १९१९ में बंबई के दूध देनेवाले पशुओं की शालाओं के बारे में लिखे हुए अहवाल में डॉ० (अब सर) हॅरल्ड मेन लिखते हैं।

"अगर बहुत से जानवर इकट्ठे रखे जावें, थोडे घंटे तक भी गोबर इकट्ठा पडा रहे, घनी बस्ती में तंग जगह में बहुत से जानवरों की भीड होने से अवश्य दुर्गंध निकले, और शहर की धूल व शायद रोग के जन्तुवाली हवा में दूध जमा किया जाय तो इन सब बातों से नतीजा अवश्य यह होगा कि अच्छा दूध बनेगा ही नहीं, आसपास के लोगों को क्लेश होगा और पशुशालाओं में मक्खियां तो होंगी ही, इसलिए उनके जरिये रोग भी फैलेगा।"

पशुओं की हालत अस्वाभाविक और दयाजनक होती है। वे नीरोगी या सुखी नहीं रह सकते। और तिसपर भी जहां तक बने अधिक दूध पाने के लिए उनपर तरह तरह के जुल्म किये जाते हैं। इससे वे बांझ हो जाते हैं और फिर कसाई के सिवा उनका कोई ग्राहक नहीं बनता।

लाहोर के स्वास्थ्य विभाग के अफसर डॉ० न्यूवेल ने सन् १९१४ में अ० भा० आरोग्य परिषद् में व्याख्यान देते हुए कहा था "थन पर जोर पडे और ज्यादा दूध निकले, इस वास्ते पशु के पिछले भाग में उसकी पूंछ डाल देते हैं। यह मैंने खुद अपनी आंखों देखा है।"

कलकत्ते के जीवदया मंडल के सभासद् मैत्रबाबू लिखते हैं "कलकत्ते के ग्वाले गाय की योनि में फूंक मारते हैं,

या खारा पानी डालते रहते हैं, अथवा उसमें उसकी पूंछ, आदमी का हाथ या ४ सूत व्यासवाला व १८ सूत लंबा घास का पूला रखते हैं । यह बहुत ही घातकी कार्य है । इससे पशु बिगड उठते हैं । अभियुक्तों के वकीलों ने दलील की कि इस क्रिया में क्रूरता नहीं है । किन्तु न्यायाधीशों ने यह बात नहीं मानी । जहां यह नीच क्रिया की जाती है वहां उसका इस प्रकार असर होता हुआ मैंने देखा है, कि जिसको सुन कर किसी भी मनुष्य को कल्पना हो सकती है कि जानवर को इससे कितना असह्य दुःख होता होगा—(१) पशु इस तरह कराहते हैं कि पास खडे आदमी को उस पर दया आये बिना न रहेगी, (२) पीठ झुक जाती है, (३) आंखें फट जाती हैं, (४) कंप हुवा करता है, (५) ऐसे पशुओं की पूंछ के पास कोई आदमी जावे तो वे चमकते हैं ।

"कलकत्ता शहर व आसपास के कस्बों में ३०० शालाओं के अन्दर करीब १०,००० गायें हैं । इनमें से ५,००० गायें रोज फूँकी जाती हैं । पिछले १५ महीनों में स्यालदा विभाग में ४५ ऐसे मुआमले पकडे गये थे ।"

डॉ० मोरीनो ने कलकत्ता पार्लियामेंट के सामने जो निबंध पढा था उसमें वे लिखते हैं: "प्यूरी नामक पीला रंग बनाने के लिये गडरिये लोग गाय को सिर्फ आम के पत्ते खिला कर रखते हैं, दूसरा कुछ भी खाने या पीने को पानी तक नहीं देते और उस गाय का पेशाब बाजार में खूब दाम लेकर बेचते हैं । बेचारी गाय भूख से तडप तडप कर मर जाती है ।"

ऐसा हाल पढ सुन कर अवश्य ऐसी कल्पना हो सकती है कि हिन्दुस्तान में मनुष्य नहीं बल्कि मनुष्यदेहधारी राक्षस ही बसते हैं ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस तरह पशुशालाओं में कई दिनों तक तडप तडप कर मरने की बनिस्बत कसाई के हाथ से एकबारगी कट कर मर जाना पशु ज्यादा पसंद करेंगे। और पशुशालाओं के मालिक, जो कि हिन्दू होते हैं, शालाओं की अपेक्षा कसाईघर रक्खें तो कम पाप के भागी होंगे।

यह तो हुई शहर के ऊँचे दर्जे के पशुओं की बात, लेकिन उनके बच्चों की क्या हालत होती है? कहीं दूधवाले बछडों को कसाई को बेच देते हैं, कहीं खुले मैदान में धूप ठंड और बारिश में उन्हें भूखों मारते हैं। अपनी मा का दूध तो बेचारों के मिले ही कहांसे? और उनके लिए शालाओं में किराये पर जगह कौन रक्खे? बंबई की म्युनिसिपैलिटी बछडे को सींग न आयी हो तो उसका मुर्दा उठाने के आठ आने और हो तो डेढ रुपया लिया करती है। इसलिए बंबई के ग्वाले सींग उगने के पहले ही बछडों का काम तमाम कर डालते हैं। हरसाल करीब २०,००० बछडे और पाडों के मुर्दे कूडे में जाते हैं।

जूनागढ के प्रसिद्ध दयाप्रचारक श्री. लाभशंकर लक्ष्मीदास ने एक पत्रिका में वनस्पति के दूध के लिए सिफारिश करते हुए 'टाइम्स आफ इण्डिया' में छपा हुआ निम्नलिखित पत्र उद्धृत किया है —

"ग्वाले लोग बहुतेरे बछडों को ऐसी उम्र में ही जब कि दूध के बिना वे जी ही नहीं सकते रास्तों में भूखों मर जाने के वास्ते छोड देते हैं और वे थक कर गिर जाते हैं, ट्राम, मोटर या गाडियों के नीचे दब कर मर जाते हैं।

"रात को इनको शाला में से बाहर निकाल देते हैं, और वह भी केवल इसलिए कि उन्हें बेचने के वास्ते सबका सब दूध चाहिए। इसे बहुत बडा घोर पाप कहने में जरा भी अत्युक्ति न होगी।"

श्री० केरथ लिखते हैं—"भैंस पाडे के बिना दूध देती है इसलिए पाडे बुरे लगते हैं और वे भूखों मारे जाते हैं। चार पांच महीनों के पाडे जन्मते समय जितने होते हैं उससे वजन में जरा भी बढे हुए नहीं होते। पशुमात्र में पाडों की सबसे कम सँभाल रक्खी जाती है। यह सब कोई जानते हैं कि पाडे धूप बर्दाश्त नहीं कर सकते। और जहां धूप सबसे ज्यादा कडी हो वहीं ये बांधे जाते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों ग्वाले इनकी जान लेने को ही तुले बैठे हों।"

पंजाब के कृषिविभाग के मुखिया श्री० हेमिल्टन कहते हैं—"पाडे ज्यादातर छोटेपन से बडे होते ही नहीं, किन्तु छोटपन में ही अपनी उम्र पूरी कर डालते हैं।"

श्री० रीव्ज लिखते हैं—"इस देश के दूधवाले बछडे-पाडों को इसलिए मार डालते हैं कि उनके पालनपोषण का बोझा न उठाना पडे। यह राक्षसी कार्य है। बंबई में कूडे में बछडेपाडों के मुर्दे रोज गाडियों में भर भर कर ले जाते हुए नजर आते हैं। ऊंचे दर्जे के पशुओं का इस प्रकार नाश होना देश का बडा दुर्भाग्य है और बडी लज्जास्पद बात है। संसार के दूसरे किसी सभ्य देश में ऐसा नहीं किया जा सकता।"

३५ वर्ष पहले भारत सरकार ने विलायत से डा० वोल्कर को हिन्दुस्तान की कृषि में सुधार की दृष्टि से उनसे सलाह लेने के वास्ते बुलाया था। वे लिखते हैं—"मैंने इस देश में भैंसें बहुत देखीं, पाडे बहुत ही कम इस लिए यह पूछने की मुझे बार बार इच्छा हुई कि छोटे पाडों का क्या होता है।

"गुजरात में पाडे को दूध देते ही नहीं, इस लिए वह भूखों मर जाता है। कहीं उसे जंगल में भगा देते हैं जहां

बाघमेडिया उसे फाड खाते हैं। बंगाल में इसे जंगल में बाँध आते हैं। वहां वह भूख से मर जाता है, या जंगली जानवर आकर उसे खा जाते हैं। लोग इतने निर्दय हैं तो भी अगर कोई जानवर अत्यन्त दुःखी हो तो उसे जान से मारने नहीं देते।"

पूना के कृषिविद्यालय के अध्यापक श्री. भाइलाल शंकरलाल पटेल के लेख के अनुसार सन १९१५–१६ और १९१९–२० के दर्मियान सन १९१७–१८ के अकाल के कारण बंबई इलाके में सांडबैलों की संख्या ४ फी सदी, गाय की १६ फी सदी और बछडे पाडों की १७ फी सदी घट गयी। कुल पशुओं में मिलाकर ११ फी सदी कमी हुई। इससे मालूम होता है कि हमलोग चाहे कितना ही 'गाय माता गाय माता' क्यों न किया करें, परन्तु अकाल आया कि हमलोग पहले उसको गाय की ही बलि चढाते हैं। क्योंकि गाय के बिना हमारा काम चल सकता है। गायें जितनी मरती हैं उसके मुकाबले में तो पाडे भी कम मरते हैं। पाडों से आधी भैंसें मरती हैं और गाय से चौथाई हिस्सा बैल मरते हैं। बैल की रक्षा होती है क्योंकि उसके बदले हल में कौन जुते? भैंस की भी रक्षा होती है क्योंकि वह खूब दूध देती है और उसके दूध में से मक्खन ज्यादा निकलता है। नमीवाले प्रदेश में पाडा खेती में काम आता है इसलिए उसकी भी रक्षा हो जाती है। लेकिन बिचारी गाय न ज्यादा दूध देती है, और न उसके दूध में से मक्खन बहुत निकलता है इसलिए उसका बुरा हाल होता है। तिसपर भी हमलोग गोरक्षक कहलाते हैं। लेकिन नतीजा यह होता चला जा रहा है कि गाय की दशा दिनोंदिन बिगड़ती चली जाती है।

९

मद्रास और कलकत्ते का पाप

हम पिछले अध्याय में यह देख चुके हैं कि बडे शहरों में पशुओं की कैसी बुरी हालत होती है। इसका महत्त्व इतना है कि इसके बारे में जो कुछ भी प्रमाण मैं प्राप्त कर सका हूँ उनका पूरा संग्रह कर देने का मैंने निश्चय कर लिया है जिससे सरकार तथा प्रजा का महापातक साफ साफ प्रगट हो जाय। सरकार से हमें कुछ कहना ही नहीं है क्योंकि उसकी तो

मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दहति किञ्चन।

ऐसी भव्य दशा है। परंतु देश के अमूल्य धन का नाश होते हुए प्रत्यक्ष देखनेवाले हमारे लिए यह लज्जा की बात है।

मद्रास की पशु सम्बन्धी रिपोर्ट में मि. सेम्पसन यों लिखते हैं। 'एक वर्ष में मद्रास में कम से कम ५,००० दूध देनेवाली गाएं आती हैं। जब उनका दूध सूख जाता है तब उनमें से अधिकांश कसाई के हाथों बेच दी जाती हैं और बछडे भूखों मर जाते हैं। इस तरह उत्तम दुधार गायों के वंश का क्षय हो जाता है।

'इलाके के और दूसरे शहरों की बनिस्बत मद्रास में ज्यादा दुधार गायें खींची जाती हैं। दुःख की बात है कि ओंगोल की गायें — जो उत्तम मानी जाती हैं — जब मद्रास लायी जाती हैं तब वे पहले ब्यान की होती हैं, अर्थात् उनकी दूध देने की शक्ति पूरी तरह से विकसित नहीं होती। जब वे कम दूध देने लगें तब ही वह कसाई के हाथों बेची जाने के बदले लेकर बरदायी जायँ तो आजकाल देहातों से जो गायें शहर में खिंची चली आती हैं वह खिंचाव रुक जायगा। मि० रोबर्टसन ने मद्रास के एक ग्वाले की निकम्मी मानी हुई एक गाय मोल ली। थोडे ही दिनों में वह सब से अधिक दूध देनेवाली गाय साबित हुई। कौन जाने इस तरह कितनी हजार अच्छी गाएँ युवावस्था के पहले ही निकम्मी समझी जा कर कसाई के हाथों नष्ट हो जाती होंगी? म्युनिसिपैलिटी मैले पानी वाली खेती के साथ साथ इस काम को भी कर सकती है। शहर को दूध पूरा करने के लिए दुग्धालय भी खोल सकती है और बछडों को पाल कर शहर के काम में उनको लगा सकती है। इससे खानगी काम करनेवालों को कुछ हानि हो सकती है परन्तु आमलोगों की तन्दुरुस्ती खानगी लोगों की हानि की अपेक्षा अधिक महत्त्व की वस्तु है। ऐसे प्रयत्न के सफल होने से मद्रास की बनिस्बत छोटे शहरों की म्युनिसिपैलिटियाँ भी इसका अनुकरण कर सकती हैं और ऐसे दुग्धालयों में गायों की सन्तान-अभिवृद्धि के साथ दूध का परिमाण बढाने का काम भी हाथ में लिया जा सकता है।'

मेजर मीघर और वोघन की लिखी हुई दुग्धालय से संबन्ध रखनेवाली जो किताब सरकार की तरफ से प्रकाशित की गयी है उसमें लिखा है—

"बहुत करके कोसी जिले से प्रतिवर्ष कई हजार दुधारी गायें कलकत्ते आती हैं। जाडे के अंत में जब गौएँ दूध देना बंद कर देती हैं और दूध की खपत भी कम होती है तब ग्वाले लोग ऐसी गायों को कसाई के हाथों बेंच देते हैं क्योंकि चारे की कमी और भाडे की महँगी के कारण गरमी के दिनों में गायों को खिलाना उनको बहुत भारी हो जाता है। और भी एक बात है। यहां के हवापानी के असर से बरदाने पर भी गाय गाभिन नहीं होती। इस तरह निकम्मी कर देने से गायें घटती जाती हैं और उनकी कीमत भी बढ जाती है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि दूर के अच्छी गायवाले प्रदेशों से गायों को लाना छोड कर जहां जहां हो सके वहां स्थानीय गायों को पालने की बडी जरूरत है। यह बात ठीक है कि स्थानीय गाय कम दूध देती है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि उनकी संतानों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। परंतु सुधार के बारे में पहला काम तो यही है कि इस बात पर उचित ध्यान दिया जाय। जैसे सरकार अपनी ऊंची जात की घोडियों को उत्तम घोडे ही दिखाने की पद्धति रखती है वैसे ही गायों के लिए भी होनी चाहिए।"

कलकत्ता कारपोरेशन के प्रमुख मि० पेइन के निबंध से नीचे का अंश लिया गया है।

"कलकत्ते के ग्वाले देश की उत्तम गायों का सत्यानाश करते हैं। अच्छी गायें दुर्लभ हो रही हैं और उनकी कीमत भी बढती ही जाती है। गाय को जब दूसरा बच्चा होनेवाला होता है तब वह कलकत्ते भेजी जाती है। वहां उनपर ऐसे ऐसे जुल्म किये जाते हैं कि वह छः से लेकर आठ मास तक दूध

देने में पूरे तौर पर बांझ बन जाती हैं। और जो इतने जुल्म पर भी सदा के लिए बांझ नहीं हो जातीं वह भी इतनी दुबली हो जाती हैं कि दो तीन साल तक गाभिन ही नहीं होतीं, इसी लिये कसाई के ही घर पहुँच जाती हैं। फल यह होता है आठ दश बरस तक उपकारी जीवन बिताने की जगह ये गायें केवल दो वर्ष दुधार रहती हैं और दो ही बछड़े देती हैं जिनमें से एक तो अवश्य कसाई के हाथ लगता है। यह अत्याचार देश की उत्तम गायों पर निरंतर होता रहता है।"

कलकत्ता कारपोरेशन ने दूध के बारे में विचार करने के लिये एक खास समिति बनाई थी जिसके अध्यक्ष मि. पेइन थे और ३ यूरोपियन, १ मुसलमान तथा १ हिन्दू सदस्य थे। समिति की रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है—"ग्वाले कसाई को गाय जो बेचतें है इसके कई कारण हैं। एक तो उनके पास जगह की कमी है, और उसमें नियत संख्या तक की ही गायें रक्खी जा सकती हैं और उतनी ही गायें वे रखते हैं। जब गाय का दूध देना बंद होता है तब उसे कसाई के हाथ बेच देते हैं और दुधार गाय लाते हैं। ग्वाले के पास पूँजी भी कम ही होती है, इसलिए जब दुधार गाय वह लेता है तब उसे सूके दूधवाली गाय को बेचना पडता है। ऐसे ही कारणों से वे बछडों को भी पाल नहीं सकते। इसलिए उन्हें भी कसाईखाने में बेच देते हैं। इस देश की गाय बहुत दुधार नहीं होती और बछडे के बिना दूध नहीं देती इसलिए ग्वाले फूंक कर दूध निकालने की वह नीच क्रिया करते हैं कि जिससे गाय को बडी वेदना होती है। इतना ही नहीं बल्कि वह यदि सदा

के लिए नहीं तो अधिक समय तक के लिये तो जरूर बाँझ बन जाती है। इससे जो गाय सूक जाती है उसको बेंचने में ही ग्वाले को लाभ है, चाहे दूसरी ओर से जो गाय कई बछडे और बहुत दूध देती उसकी इस तरह हत्या हो जाने से गायों की सन्तान दिनों दिन छीजती जाती हैं और देश में यों ही जो दूध कम और खराब मिलता है उसपर इसका और भी बुरा असर पडता है। उत्तम गायें प्रति वर्ष शहरों में खिंच जाती हैं इससे उनका अभाव बढता ही जाता है।"

इम्पीरियल डेरी एक्सपर्ट मि. स्मिथ ने कलकत्ते के पिंजरापोलवाले को जो खत लिखा था उसमें वे लिखते हैं—

"बडे शहरों में जवान गाय और भैंस के बध को रोकना सर्वप्रथम और सब से अधिक आवश्यक काम है। . . . . .

"पिछले १५ वर्षों में इस तरह ४ बडे शहरों में २,५०,००० जवान गाय भैंसों का बध हुआ। इसको रोकने के लिए व्यापारी ढंग से दूध पूरा करने की व्यवस्था करनी चाहिये। जहां गाय अपनी पूरी जिन्दगी बिता सकें वहां उनको रख कर दूध उत्पन्न करना चाहिये। दूध को जंतुरहित (जल्दी न फटने योग्य, पेसचुराइज्ड) और ठंडा करके शहरों में लाना चाहिए। बर्तन बिल्कुल साफ और बंद होने चाहिए।

"शहर में दूध उत्पन्न होता हो तो वह अच्छा कैसे हो सकता है? घनी बस्तीवाले गलीकूचों में अच्छा और स्वच्छ दूध उत्पन्न नहीं हो सकता। इतना ही नहीं परंतु जहां जमीन बहुत ही महँगी होती है, जहां महसूल, मजदूरी वगैरह का खर्च देहातों से कई गुना ज्यादा होता है, वहां गाय रखकर दूध उत्पन्न करें तो वह महँगा ही मिल सकता है। दयाधर्मी व्यापारी

लोग इस प्रश्न को हाथ में लें और देहातों में स्वाभाविक परि-स्थिति के बीच में दूध उत्पन्न करें और उसे बडे शहरों में ले जा कर बेचने की व्यवस्था करें तो शहर के ग्वाले उनके साथ बराबरी न कर सकें इतने कम दाम पर दूध बेच सकें। और जैसे लंडन, कोपनहेगन, न्यूयार्क वगैरह शहरों में हुआ है वैसे ही यहां भी शहरों से ग्वालों को निकाला जा सकेगा।

"इस प्रकार यदि हो तो गाय की रक्षा तो होगी ही इसके साथ ही साथ सस्ता और स्वच्छ दूध मिल सकने के कारण मनुष्यों की भी रक्षा होगी।

"कलकत्ते का पिंजरापोल दो हजार बूढे पशुओं को और कुछ वर्ष जिन्दा रखने के लिये डेढ लाख रुपये खर्च करता है। पिंजरापोल के आश्रयदाता दस बरस की मदद के जितनी पूंजी इकट्ठा करके दुग्धालय खोलें तो प्रतिवर्ष दो हजार जवान गायों की हत्या का होना रुक जायगा और कलकत्तावासियों को सस्ता साफ और स्वच्छ दूध भी मिलेगा और पूंजीवाले भी अच्छा व्याज पा सकेंगे।"

१०

कलकत्ते का पाप

मि० आइसा ट्वीड "काउकीपिंग इन इंडिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"बिसुकी गायों को कसाई या शहर के व्यापारी के हाथ कभी न देना चाहिए, बल्कि गांव के ऐसे लोगों के हाथ देना चाहिए जिनके पास चारे का साधन हो और जो गायों की सँभाल कर सकते हों।

"अच्छी गाय सुलभ नहीं है। और यदि अच्छी गाय किसी के हाथ आवे तो उसे ले ही लेना चाहिए फिर चाहे कितना ही मूल्य क्यों न देना पडे। भविष्य में वह उसका बदला पूरी तौर पर चुका देगी। भली चंगी दुधार गाय कसाई को देना दुःखप्रद तो है ही साथ ही साथ इससे देश की भी हानि है, और यह गुनाह है।

"किसी को अच्छी गाय बेचनी हो तो उसका विज्ञापन निकालना चाहिए। सामान्य रूप से कसाई उस गाय के लिए जितना मूल्य देता है उतना मूल्य देनेवाले बहुत से मिल जावेंगें और इस प्रकार गाय बच जायगी।

"मैंने इस विषय में बहुत से लोगों से बातचीत की है और उन सब लोगों ने यही कहा कि कसाई लोगों को हम अच्छी गाय न देंगे। परन्तु उनमें से बहुत कम लोगों ने अपना वचन पाला। कसाई उनको बिसुकी गाय के लिये अधिक से अधिक ६०) देता है—जब कि वह आम तौर पर ३०) या ४०) की होती है। जो कुछ कसाई दे रहा था उससे १०) अधिक लेने के लिए मैंने उनसे बार बार कहा परन्तु उन्होंने मुझ से दूनी कीमत माँगी और अन्त में जो दाम मैं देने को तैयार था उससे कम दामों में ही उन्होंने कसाई के हाथ गाय बेच डाली।"

उसी पुस्तक में दूसरे स्थान पर मि. ट्वीड ने यह सिद्ध किया है कि गाय को दूसरे वर्ष रखने में पहले वर्ष की अपेक्षा तिगुना लाभ होता है।

बिसुकी गाय को यदि बेच दिया जाय तो

जमा		खर्च	
दूध की उपज ३०० दिन की जब कि वह रोज ६ सेर दूध दे और दूध का भाव ४ सेर का हो	४५०)	गाय का मूल्य	२४०)
१० महीने के बछड़े की कीमत	४०)	दस महीने के चारे का दाम	२५०)
कसाई के हाथ गाय बेचने से	६०)		
कुल	५५०)	कुल	४९०)

कुल आमद ५५०) कुल खर्च ४९०) नफा ६०)

और दूसरे बार गाभिन होने तक रक्खे तो—

जमा		खर्च	
दूध और बछडे की कीमत (उपर्युक्तानुसार)	४९०)	गाय की बिक्री का मूल्य और चारे की कीमत (उपर्युक्तानुसार)	४९०)
गाय के ब्याने के पश्चात् उसकी कीमत	२४०)	बिसुकने के बाद चार महीने का चारा	३२)
कुल	७३०)	कुल	६२२)

कुल आमद ७३०) कुल खर्च ५२२) नफा २०८)

उसके बाद वह कहते हैं—'व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। कसाई को गाय देना हमें लाभदायक नहीं है। अनेक दुग्धालय आजकल बैठते जा रहे हैं, इसका कारण यह है कि वे बछडे को मरने देते हैं और गाय को कसाई के हाथ बेच डालते हैं। इसका कारण है व्यवस्था का अभाव तथा सब काम नौकरों पर डाल देना।'

अन्त में वे लिखते हैं—

"पहले तो ग्वाला गाय को सीधे कसाई के हाथ बेंच देता था परन्तु आजकल व्यापारी को देता है। यह व्यापारी उसे कसाई के हाथ बेंच देता है। व्यापारी दुधार गाय को ग्वाले के हाथ बेच देता है और उसके दाम में बिसुकी गाय ले कर उसे कसाई के हाथ बेंच देता है। ग्वाला कहता है कि मैं गाय या बछडा कोई भी कसाई को नहीं देता, बल्कि देश में भेज देता हूँ। यह सरासर झूठ बात है। गाय देश को तो नहीं भेजी जाती। या तो वह कसाईखाने जाती है और या कटने के लिए रंगून या सिंगापुर जाती है।

"सरकार को या म्यूनिसिपैलिटी को अच्छी गाय का बध रुकवाना चाहिए।"

लेफ्टिनेण्ट कर्नल मेट्सन ने इलाहाबाद वाले "पायनियर" में तीन वर्ष पूर्व यह लेख लिखा था कि "दूध के बारे में जो स्थिति है वह बडी ही गंभीर है। इस देश में कोई छः करोड गाय भैंसें होंगी, परन्तु इनमें से बहुत ही कम इतना दूध देती हैं कि बछडों को पिला देने के बाद कुछ दूध बच जाय। अधिकांश गायें तो अपने बच्चों का पेट भी मुश्किल से भर सकती हैं। इससे यह साफ जाहिर होता है कि शहरों में दूध की अत्यन्त कमी क्यों रहती है। यही दशा अत्यन्त शोचनीय है, लेकिन भविष्य में तो इससे भी भयंकर स्थिति का हो जाना संभव है। बस, इसी बात की चिन्ता है।

"पन्द्रह बीस वर्ष पहले दूध सस्ता और काफी मिलता था परन्तु आज तो हजारों बच्चे ऐसे होंगे कि जिनके लिए उनके मांबाप दूध दूध पुकारते हैं, और दूध के धंधे में जरा भी व्यवस्था हो तो जिसमें ठीक लाभ होता रहे उतना दाम देने को तैयार रहते हैं लेकिन तिस पर भी ठीक सच्चा दूध नहीं मिलता। कमी तो इतनी है कि इसके कारण दूध में बडी मिलावट की जाती है। साथ साथ दूध का भाव भी बेहद चढ गया है। खपत ज्यादा हो जाय और भाव भी बढ जाय तब तो दूध की आमद ज्यादा होनी चाहिए लेकिन है नहि। इसका कारण यह है कि ढोर पैदा करनेवाले प्रदेशों में से जितने चाहिए उतने जानवर अब नहीं मिलते।

"पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व शहरों की आवश्यकता पूरी करने के लिए ढोर मुख्यतः पंजाब में मिलते थे। अमृतसर में

सांहीवाल गायें काफी तादाद में बिका करती थीं और हरियाने से भी बहुत सी गायें मामूली भाव पर आतीं। ये दोनों झरने अब सूख गये हैं। सिंध में भी गायें हैं, लेकिन काफी नहीं हैं। फलतः आजकल शहरों में भैंसें आने लगी हैं। लेकिन अच्छी भैंसें भी काफी नहीं आती। सन् १९११ ही में मैंने रोहतक हिस्सार और फाजिलके के इर्द गिर्द के भागों से तीन महीनों में १५०० दुधार भैंसें १००) औसत की दर से मोल ली थीं। आज उतनी ही कोशिश से मुश्किल से कहीं ५००-६०० भैंसें मिल सकती हैं। दाम तो १००) की जगह २००) या ३००) तक देना पडता है।

"हिन्दुस्तान के शहरों में ढोरों की छीछालेदर हो रही है। ऐसी दुर्दशा संसार के किसी देश में नहीं है। इस कारण स्थिति गंभीर हो गयी है।

"यदि ढोर बहुतायत से पैदा हों तो यह खराबी देखने में न आवे। लेकिन उनकी तो पैदाइश ही कम है। जिन देशों में ढोर की पैदाइश होती है वहां चौपाये हैं तो बहुत, लेकिन ठीक दूध देनेवाले पशु दिन पर दिन कम होते जाते हैं। अच्छे पशु शहर में खिंच आते हैं और वहां काट डाले जाते हैं। दुर्बल ढोर बच जाते हैं और उन्हींकी सन्तान बढती जाती है।"

११

बंबई का पाप

अब बंबई के ढोरों की दुर्दशा सुनिये।

सर हॅरल्ड मेन ने बंबई की पशुशालाओं का जो ठीक ठीक वर्णन किया है, उसे हम देख चुके। हम यह भी जान गये कि इंग्लिस्तान और संयुक्त राज्य (अमेरिका) की अपेक्षा बंबई में दूध दसबारह गुना ज्यादा महँगा मिलता है। इतना महँगा होने पर भी दूध होता कैसा है? १४०० नमूनों की जांच कर के डाक्टर जोषी ने देखा कि उनमें सौ में से अस्सी नमूनों में तो पानी मिला हुआ था और सौ पीछे नब्बे में गंदगी के कारण कीटाणु भरे हुए थे। अब यह दूध भी आदमी पीछे नित्य साढे सात तोले या डेढ छटांक से कुछ ही ज्यादा पडता है। परंतु दूध इंग्लिस्तानमें आदमी पीछे २५ तोले या सवा पाव और संयुक्त राज्यों में ५० तोले या ढाई पाव पडता है। सन् १९१५ में बंबई में दूध की रोजाना खपत थी डेढ लाख सेर और १९२२ में वह घट कर रह गयी १,१४,९८५ सेर। परिणाम यह होता है कि बंबई में पैदा होनेवाले बच्चों में से आधे तो साल भर के भीतर ही मर जाते हैं और साधारण मरणसंख्या भी ऊंची ही रहती है।

मद्रास और कलकत्ते में गोरुओं पर अत्याचार होता है। बछडे मार डाले जाते हैं। यही दशा बंबई में भी है। डा० जोषी लिखते हैं—

"बडे शहरों में बिसुकी गायों की हत्या होती है। इसलिए देश में अच्छे दूध देनेवाले ढोरों की संख्या घटती जाती है। बंबई में बहुत गायें भैंसें बिसुकती हैं। इन्हें या तो कसाई के हाथ बेच डालते या गांवों मे चरने को भेज देते हैं। बंबई के प्रधान पशु-निरीक्षक का कहना है कि बंबई की बिसुकी गाय भैंसों में से सैकडा पीछे पछत्तर कट जाती हैं। सन् १९१४-१५ मे बांदरा में ४४,१७७ गायों और ८,५७४ भैंसों की हत्या हुई। इनमें से ३,००० गायें और भैंसें तो सभी बंबई की ही पशुशालाओं से आयी हुई थीं। उतने ही समय में कुरला में ५,००० भैंसें कटीं। इस गिनती से, बंबई में जितनी भैंसें हैं, उनमें से सैकडे पीछे ४० से ४५ तक कसाईखाने को जाती हैं। इसीलिए देश में दुधार गोरुओं की इतनी कमी रहती है।"

सन् १९१२ में सरकार ने बंबई इलाके के ढोरों की दशा के विषय में मि० ह्युलेट की लिखी हुई किताब प्रकाशित की थी। उसमें वे कहते हैं—

"सूरत की भैंस जब लगती है तब बंबई का ग्वाला उसे लाता है और बिसुक जाने पर कसाई के हाथ बेंच देता है। मुख्यतः चर्बी और चमडे के लालच से ही हत्या होती है। मांस को सुखा कर ब्रह्मदेश को भेजते हैं।"

पूना के कृषिविद्यालय के प्रोफेसर नाइट और मिस्टर ह्रोर्न ने "बंबई में दूधका धंधा" शीर्षक विषय पर १९१३ में

एक लेख लिखा था । शहर में ढोरों को रखने से क्या नुकसान होता है, इस बात को वे इस प्रकार दिखलाते हैं:—

" मूल्यवान् खाद व्यर्थ बरबाद होती है । गोरू को हरियाली (हरा चारा) मिलती नहीं है, और जो कुछ मिलती भी है वह भी दूर से आती है इसलिए वह चारा न तो ताजा और न हितकारी ही होता है । हरियाली का भोजन मिल नहीं सकता इसलिए जानवर को सूखी घास और बहुत सा अनाज देते हैं । इससे उसकी तबीअत बिगड जाती है । इसके अलावा बहुत देर तक एक जगह पर ही बँधे रहने और घास वा मिट्टी रक्खे विना ही पत्थर पर बैठाये जाने के कारण कोई जानवर शरीर से सुखी नहीं रह सकता । खिलाने का खर्च इतना अधिक होता है कि बिसुकी गाय भैंसों वा छोटे छोटे बछडों को रक्खा नहीं जा सकता और उन सबके कसाई के घर चले जाने से ढोर की उत्तम जातियां बरबाद हो जाती है । "

इसी लेख के अन्त में लेखक कहते हैं ।

" बंबई और कलकत्ते जैसे बडे शहरों में ग्वाला तुरत की ब्यायी हुई गाय या भैंस को लाता है और बछडे को भूखा रख कर या किसी और तरह से वह उसे मार डालता है । जब तक गाय के खिलाने का खर्च निकलने लायक दूध होता रहता है, तब तक वह उसे दुहता है और बाद में कसाई के हाथ बेंच देता है । इस प्रकार दुधार गोरू की संतति का असमय में ही अन्त हो जाता है । देशावर से बंबई में ढोर लाने में बहुत खर्च पडता है इस खर्च को निभाने के लिए जो अच्छी से अच्छी गाय मिल सके उसे ही रखने में इन लोगों को नफा है । इस समय अच्छी से अच्छी गाय भैंस की संख्या

बहुत घट गयी है, यहां तक कि अन्तिम दस वर्षों के भीतर इनका भाव तिगुना चढ गया है । ”

इन लेखकों ने यह भी बतलाया है कि इस स्थितिमें क्या करना चाहिए :

“ बंबई एसे शहरों में सार्वजनिक उपयोग के ढोरों का रखना कानूनन् बंद कर दिया जाय । उसके बाद ग्वाले को इतनी दूर जाना पडे जहां हरा चारा मिल सके, और वह इतना सस्ता हो कि बिसुकी गाय और बछडों को भी पाला जा सके । घर घर दूध पहुँचाने के लिए इन लोगों को सहयोग पद्धति स्वीकार करनी पडे । इतना होने से दूध के नियंत्रण का काम सरल हो जाय, दूध उत्पन्न करने और पहुँचाने का खर्च कम पडे, ढोर का खर्च भी कम लगे, दूध स्वच्छ मिले और देखभाल का काम सहज हो जाय — ये सब बातें हो सकती हैं । ”

बडे शहरों में दूध पहुँचाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी । इसकी रिपोर्ट सन् १९१५ में छपी । उसका थोडासा अंश नीचे दिया जाता है —

“ बंबई में एक साथ ही २०,००० तक भैंसें रहती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्यतः गुजरात काठियावाड से बंबई में वर्ष में ३०,००० भैंसें लायी जाती हैं । इन ३०,००० में से साधारणतः ३,००० तो निकम्मी हो सकती है । परन्तु मालूम होता है कि वस्तुतः इसकी अपेक्षा बहुत बडी संख्या कसाईघर में जाती है । १९१४-१५ में बंबई की शालाओं से कुल १३,५०० भैंसें कसाईखाने को गयीं । इससे मालूम होता है कि बंबई में प्रायः हर साल १०,००० उपयोगी भैंसें मारी जाती हैं ।

"शहर के ग्वालों को भैंस का दूध चाहिए। पाडे को पालने में कुछ लाभ नहीं है, इसलिए उन्हें पाडे नहीं चाहिए। अतएव सेवा की कमी से उसे वे मर जाने देते हैं। कभी कभी उसे जीते ही कसाईखाने में पहुँचा आते हैं। इस प्रकार देश की उत्तम भैंसों के पाडे बडी संख्या में नष्ट हो जाते हैं।"

नडियाद की 'इण्डियन डेरी सप्लाई कम्पनी' के मि० रीव्ज कहते है—

"ढोरों की निकासी, बच्चों के बध और नाश के कारण ऊंची जाति के ढोरों का सत्यानाश होता जाता है। इस देश में बछडे को मां के पास ही दूध पीने देने की रीति है इस लिए दुधार ढोर के साथ साथ उसका बछडा भी जाता है। बारह वर्ष पहले अच्छी सिन्धी गाय ८०) रुपये में मिलती थी। परदेश भेजने के कारण उनकी इतनी कमी हो गयी है कि आज १८०) देने पर भी वैसी अच्छी गाय नहीं मिलती। उस समय दिल्ली की अच्छी भैंस १२०) में आती थी और आज २००) में में मिलती है। इस जाति की भैंस की भी कमी होती जा रही है, क्योंकि यह कलकत्ते बंबई आदि स्थानों को भेजी जाती है और वहां दूध सूख जाने पर कसाई के हाथ जाती है।

"यदि ढोरों का नाश रोकना है तो दुधार पशु की हत्या बंद करनी चाहिए और बिसुकी गाय भैंस को गांवों में पहुँचाने के लिए रेल का भाडा बहुत कम रखना चाहिए।"

गुजरात की तथा दिल्ली की भैंस का मिलान करते हुए मि. स्मिथ लिखते हैं:

"गुजराती भैंस बंबई के ग्वाले के एक काम में नहीं आती। वह काम यह है कि कसाई के हाथ बेंचते समय उससे

दिल्ली की भैंस के बराबर नफा नहीं होता । इन लोगों को तो ऐसा पशु चाहिए कि जो ठीक दूध देवे; और बिसुकने पर कसाई के हाथ दे डालना तो है ही, इसलिए शरीर से भी भारी होवे । गुजराती भैंस की बनिस्बत दिल्ली की भैंस बहुत अधिक मांस वाली होती है ।

" ऐसा सुनने में आता है कि गुजराती भैंस की नस्ल नेस्त नाबूद होती जा रही है । एक समय की प्रख्यात सांहीवाल गाय जिस प्रकार नाबूद हो गयी, उसी प्रकार यह गुजराती भैंस भी न कहीं हो जाय । हमें आशा है कि सरकार इस बात का ख्याल रक्खेगी ।

सन् १९१९ में डाक्टर मॅन ने बंबई की दुधार ढोरों की शालाओं पर एक रिपोर्ट लिखी थी । उसमें वे लिखते हैं—

" बंबई ऐसे शहर में बिसुकने पर ढोर काट दिये जाते हैं । अब ऐसे अच्छे ढोर यदि इतनी संख्या में उत्पन्न भी होते जाते तो भी पूरा दूध न मिलने की चिंता न होती । परन्तु जितनी खपत है उतने पशु उत्पन्न नहीं होते । इसलिए अच्छे पशु का मिलना बहुत कठिन होता जाता है, और दाम भी महँगा होता है. इसलिए दूध का भाव तो अवश्य ही चढ़ेगा । "

सन् १९२० में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने बम्बई की धारासभा में इस आशय का एक प्रस्ताव पास कराया था कि देश के ढोरों की खोज कर के उनकी हत्या और उनके निकास के ऊपर नियन्त्रण करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सरकार एक समिति नियुक्त करे । इस प्रस्ताव को सभा में उपस्थित करते समय उन्होंने कहा था:

"बम्बई के कारपोरेशन को इस सम्बन्ध में मैंने पत्र लिखा था और म्युनिसिपल कमिश्नर की रिपोर्ट से मालुम हुआ कि बम्बई शहर में हर साल १०,००० उपयोगी भैंसों की हत्या होती है। इसे रोकना सरकार का काम है या प्रजा का इस झगडे में पडने की हमें कोई जरूरत नहीं है। परन्तु यदि प्रजा आगे आ कर इस हत्या को न रोके, तो सरकार को ही ऐसी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए कि जिससे ये दुधार पशु कसाई खाने न जाने पावें और बिसुके जानवरों के लिए ग्वाले को कोई दूसरा प्रबन्ध करना ही पडे।"

सन् १९२४ में मि० कोठावाला ने लिखा था—

"१९२१ में बांदरा में ११,५३६ भैंसें कटीं। कुरला में भी लगभग इतनी ही भैंसें कटीं। ये सब बंबई की शालाओं में से ही आयी थीं। इनमें बहुत सी तो केवल दूसरे तीसरे ब्यान की ही थीं। और अपनी जवानी में ही मारी गयीं।"

हमारे अन्तिम गवाह बंबई के म्युनिसिपल कमिश्नर मि० वलेटन हैं। इन्होंने सन् १९२४ की १५वीं दिसेम्बर के दिन कारपोरेशन को इस आशय का पत्र लिखा था—

"आज बंबई में दूध महँगा मिलता है और भविष्य में, भय है कि, इससे भी महँगा मिलेगा। इसका एक ही कारण है, वह यह कि ढोरों को शहर के बीच में ही रखा जाता है। दूध की महँगी के दो कारण हैं—(१) ढोर को खिलाने में बहुत खर्च लगता है, (२) ढोर की मूल कीमत में बडा घाटा आता है।

"ढोर को कृत्रिम दशा में रखते हैं इसलिए उससे पूरा दूध लेने के लिये उसे महँगा खाना देना पडता है। यदि वे स्वाभाविक दशा में रक्खी जायँ, तो ऐसा महँगा खाना कभी न

देना पडे । इसके अलावा जहां चारा उपजता है वहां से बहुत दूर शहर में लाना पडता है । इतनी बहुत दूर से चारा लाने में खर्च लगता है और बंबई जैसे शहर में चारा इकट्ठा कर रखने में भी काफी खर्च पडता है । उससे खाने का खर्च बढ जाता है ।

"इसकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि ढोर की मूल कीमत में बडा घाटा आता है । प्रचलित चाल के अनुसार बिसुक जाने के बाद गाय को कसाई के हाथ बेंचने के सिवाय ग्वाले के पास कोई चारा रह नहीं जाता । कसाई से उसे जो कीमत मिलती है उसमें और मूल कीमत में बहुत अन्तर होता है । इसलिए उसे यह घटी दूध के दामों में से ही पूरी करनी पडती है । ढोर यदि अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहे, और फिर ब्याती हुई पूरी आयु भोग कर मरे तो इस आफत से हम बच सकते हैं । अभी बंबई में आनेवाले पशुओं की कीमत तो बहुत बढ गयी है, परन्तु बिसुकी गाय वा भैंस की कीमत उसी हिसाब से नहीं बढी है । दूध की महँगी का यह एक विशेष कारण है । यदि शहर में से शालाएँ बिलकुल हटा न दी जायँगी, तो दूध के भाव के और भी चढते जाने का डर लगा ही रहेगा ।

"यह तो बम्बई की बात हुई । किंतु बम्बई में आनेवाले उपयोगी पशु के असमय में ही कट जाने से सारे देश का स्वाभाविक धन निरन्तर घटता ही जाता है । यदि शहर में शाला न हो तो शायद ही किसी उपयोगी पशु की हत्या हो सके ।"

१२

सरकार की कुदृष्टि

पशुबध के निवारण के उपायों पर अब तक हम फुटकर विचार करते आये हैं । अब उन्हें एकत्र कर के इस लेखमाला को समाप्त करना चाहिए । परन्तु उपाय के सवाल को छेडने के पहले हम जरा यह भी देख लें कि सरकार का हाथ हमारे पशुधन के नाश में कितना है ।

प्राचीन समय में और मुसलमानी राज्य में भी गोचर बहुत था और जंगलों में भी छुट्टे गोरू चर सकते थे । इसलिए ढोर के पालने का खर्च करीब करीब कुछ भी नहीं पडता था । किन्तु गोचर पर सरकार की कुदृष्टि पडी । पशुओं की हिमायत अब कौन करे? शायद कोई उनका पक्ष ले भी, तो फिर उसकी सुनता ही कौन था? सरकार ने मालगुजारी के लालच में गोचर को जुतवा कर बन्दोबस्त करा दिया या कहीं कहीं पादरियों वगैरह को भी दे दिया ।

डिग्बी साहब ने लिखा है—

"गुजरात में मुक्तिफौजवाले (पादरियों का एक दल) खेती के लिए कुछ जमीन देख रहे थे । ढूंढते ढूंढते उनके काम लायक ५६० एकड जमीन उन्हें मिल गयी मगर उसका अधिकांश

गोचर था, जिसमें अनादि काल से घास उगती चली आती थी। यदि इस खेत को टुकडे टुकडे कर दिया जाय या वह नष्ट हो जाय तो किसानों की बडी बस्ती को तकलीफ पहुँचती। किसानों ने फरियाद भी की परन्तु उनकी मिहनत बेकार गयी। पादरी आये तो थे लोगों को शाश्वत जीवन देने के वास्ते। फिर वे दिव्य वस्तुओं के साथ साथ पार्थिव वस्तु भी हाथ कर लें और फलतः लोगों की मर्त्य लोक की यात्रा समाप्त हो जाय तो क्या हानि थी? सरकार ने भगीरथ प्रयत्न से हुल्लड का होना रोका। जिस आदमी ने मुझसे यह बात कही, उससे मैंने कहा कि 'लोगों को दंगाफसाद करना चाहिए था।' इसका उन्होंने जवाब दिया, 'शायद, हां, एक बार तो वे दंगे की तैयारी तक कर चुके थे।'"

इस प्रकार गोचर दबा लिये जाने के कारण, गोचर के विषय में हमारा देश सबसे पीछे है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों मे १६ एकड जमीन पीछे १ एकड, जर्मनी तथा जपान में ६ पीछे १, इंग्लिस्तान तथा न्यूज़ीलैण्ड में ३ के पीछे १ किन्तु हमारे देश में २७ एकड पर केवल १ एकड गोचर है। संयुक्त राज्यों में औसतन ढोर पीछे १२ एकड, न्यूज़ीलैण्ड में ८, जपान में पौने सात, इँग्लैण्ड में साढे तीन एकड गोचर है, किन्तु हिन्दुस्तान में केवल ·७८ (पौन एकड से कुछ अधिक) ही है। फिर ढोर की यहां इतनी दुर्दशा हो तो इसमें आश्चर्य्य की बात ही क्या है?

सर विलियम हंटर लिखते हैं—

"कुछ तो हवा तथा जमीन की प्रतिकूलता के कारण, कुछ गोचर की कमी और कुछ लापर्वाई के कारण ढोर की दशा

यहां बहुत ही बुरी है । खेती बढती है और गोचर घटता जाता है । बेचारे पशु के लिए दिन पर दिन मुश्किल दिन आते जाते हैं ।"

भारत सरकार के कृषि विषय के सलाहकार कहते हैं—

"पशुपालन के लिए गोचर की बहुत आवश्यकता है । गोचर में चरने से ढोर के पैर और मांसपेशी मजबूत होते हैं और शरीर का पूरा विकास होता है । बाडे में बाँध कर खाना देने से पशु छोटा, ऐंठे हुए पैरोंवाला और दुर्बल होता है । बच्चों को भी अगर मा के साथ फिरते रहने दिया जाय तो उनकी अच्छी सँभाल हो सकती है ।"

कोई कोई कहते हैं कि जब जनसंख्या बढती है तो गोचर जमीन भी जुतेगी ही । किन्तु नीचे के आंकडों से पता लगेगा कि खेती बढी है जरूर, मगर साथ ही साथ औसत उपज कम होती गयी है—

बंबई

	वर्ष १९१०–११	१९१३–१४
जोती हुई जमीन (एकड)	३,०७,४२,०००	३,०८,४५,०००
एकड पीछे उपज (सेर)	२७०	२५०॥

बंगाल

	वर्ष १९०२–०४	१९०४–०५
जोती हुई जमीन (एकड)	५,९३,१४,०००	६,१३,०४,०००
कुल उपज (टन)	२,६३,७७,१९७	२,४६,७६,४३९

उत्तरपश्चिम सीमान्त प्रदेश

	वर्ष १९०३–०४	१९०७–०८
जोती हुई जमीन (एकड)	२४,६६,२२०	२६,५७,९०६
फी एकड उपज (सेर)	३२९	२८३

सरकार की जंगल संबंधी नीति से जो नुकसान हुआ है, उसका वर्णन डिग्बी यों करते हैं—

" १८९८ में जंगल की उपज १२,३९,९१२ पाउंड हुई जिसका आधा जंगलों की सँभाल में ही खर्च हो गया। लोगों की जो हानि गोचर और इंधन की हुई उसका पता भगवान् ही जानते हैं। किसानों के पुराने अधिकारों का बदला यदि सरकार चुकाने बैठे तो उसे बहुत धन देना पडेगा।"

सर विलियम हंटर कहते हैं:

" खेती के सुधार में पहली बाधा यह है कि ढोर कम हैं और जो हैं वे भी निर्बल हैं...

" दूसरी बाधा यह है कि खाद नहीं होती। यदि पशु अधिक हों तो खाद भी अधिक होवे। और लकडी के अभाव में लोग गोबर का केडा जलाते हैं। इस स्थिति में खेती करें और अन्न उपजावें यह हो नहीं सकता। हां, जमीन का रस भले ही लूट सकते हैं।"

बाकी रही सही कमी सरकार के खेतीवारी और पशुवैद्यक विभाग ने बैल की बोझा ढोने की शक्ति बढाने पर ख्याल रख कर, गाय की दूध देने की शक्ति का नाश कर के गाय की जड खोद कर के पूरी कर दी। यहां बात है कि अब दूध के लिए कोई गाय रखता नहीं। फलतः बैल के लिए गाय और दूध के लिए भैंस रखनी पडती है। इसलिए एक काम के लिए दो जानवर रखने पडते है। आखिर, एक और इससे गाय का और दूसरी ओर पँडवे का नाश होता है।

मि० विलियम स्मिथ कहते हैं:

"मैं हिन्दुस्तान में १६½ वर्ष से हूं। इस दरम्यान मैं पंजाब, संयुक्तप्रात, मध्यप्रान्त, सिन्ध, बंबई तथा मद्रास प्रान्त में पशुपालन के धंधे से मेरा नजदीकी सरोकार रहा है। मेरा यह विचारपूर्वक मत है कि मेरे आने के बाद से पशुओं की यहां अवनति हुई है अथवा अधिक सँभल कर यों कहूँगा कि १६ वर्ष पहले जिस प्रकार के अच्छे गाय बैल मिलते थे, वैसे अब कितना भी दाम देने पर भी काफी तायदाद में नहीं मिलते।

"सरकारी कृषि विभाग के ऐसे सांडों का ही परिवार तैयार करने के कारण कि जिनके बच्चे बहुत दूध देने वाली गायें न हों, और उसके ऐसी शिक्षा बराबर देते रहने के कारण कि जो गाय बहुत दुधार होती है उसका बछडा अच्छा बैल नहीं होता है, ढोरों का जितना नुकसान हुआ है, उतना और किसी कारण से नहीं, क्योंकि इससे तो सारे उद्योग की जड पर कुल्हाडा पडा है।

"दूध और वहनशक्ति, दोनों का साथ साथ विकास करना चाहिए। एक के बिना दूसरा असंभव है और दोनों में कभी विरोध पड नहीं सकता।"

१३

दर्द का इलाज

अन्तिम किन्तु सब से अधिक महत्त्व की बात यह विचार करने की है कि ऊपर की बतलायी हुई दुर्दशा से बचने का क्या उपाय है?

इस भयंकर स्थिति का मुकाबला करने के लिये जरूरी, बल्कि सब से जरूरी बात यह है कि हमारी गोशालाओं पिंजरापोलों आदि को, जमाने को देख कर, फिर से ठीक ढंग पर रचा जाय। दस बीस बूढे ढोरों को आश्रय देने या दो चार रोगी चौपायों का इलाज कर के सन्तोष कर लेने से काम न चलेगा। इसका कारण यह है कि आज हम जितने निकम्मे ढोरों को निकाल बाहर करते हैं, उन सभी को केवल सर्वसाधारण के दान पर ही पालना अब संभव नहीं है। अब तो हमें धर्मादा संस्थाओं की आमदनी बढाने के दूसरे उपाय ढूंढने पड़ेंगे।

प्रथम बात तो यह कि अपनी जवानी के समय पशु जो कुछ नफा देवे उसे इकट्ठा करना और उसीके बुढापे के लिए संचय कर

रखना चाहिए। इस नफे का उस पशु के बुढापे में, बीमारी में और आकस्मिक प्रसंगों में उपयोग होना चाहिए।

इसका अर्थ यह है कि हर एक गोशाला या पिंजरापोल जहां कहीं हो वहां के सभी लोगों के लिए आवश्यकतानुसार पूरा घीदूध जुटाने का काम अपने सिर लेवे। अर्थात् आबादी के हिसाब से थोडे या बहुत दुधार पशु गोशाला में रक्खे जायँ। जितने पशु लगते हों, यानी दूध दे रहे हों, उन्हें तो शहर के निकट रखना चाहिए और बिसुकी या अशक्त ढोर को किसी ऐसे गांव या जंगल में रखना चाहिए जहां उसे पालने का खर्च बहुत कम या कुछ न पडे।

औलाद के ऊपर ध्यान न देना भी पशुओं की खराबी का एक कारण है। इसलिए गोशाला में अच्छा साँड होना चाहिये। आसपास के लोगों को भी उसका उपयोग करने देना चाहिए। अमेरिका के उत्तम पशु के साल भर में १० से १५ हजार सेर दूध होता है और हमारे पशुओं के केवल ढाई से साढे तीन हजार सेर तक। अगर पशुओं की औलाद का हम ध्यान रखें, और उनकी सेवा सँभाल भी ठीक ठीक हो सके तो दूध की यह उपज सहज में ही दुगुनी तिगुनी बढायी जा सकती है। दाग कर छोडे हुए साँड शायद ही कभी अच्छे होते हैं। गोशालाएं उन्हें भटकते देने के बदले आप ले लेवें तो अच्छा हो। जिस प्रकार ब्राह्मण को देने के लिए सडी सुपारी, विवाह में बायन बांटने को बुरी मगर सस्ती चीजें लायी जाती हैं, उसी प्रकार जैसे तैसे किसी तरह के बछडे को छोड कर लोग पुण्य कमाना चाहते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि इसमें पुण्य नहीं किन्तु पाप होता है। वृषोत्सर्ग तो तब सही

कहलावेगा जब मनुष्य अच्छी जाति का अच्छा बछड़ा पसन्द करे और उसे छोडते समय पंचायत में उसके मरणपर्यन्त पालन-लायक धन भी सौंप देवे।

दूसरे, गोशाला या पांजरापोल में जो पशु मर जाय उसका पूरा उपयोग किया जाय। इस प्रकार हर एक मरे हुए पशु के उपयोग से जो पैसा मिले उससे एक जिन्दा पशु को कसाईखाने से बचाया जावे। दूसरे लोगों के जो पशु मरें उन्हें भी ले लेने की कोशिश गोशाला को करनी चाहिए। हर एक गोशाला में अगर कुशल चमार रहे तो खाल का बन्दोबस्त हो सकेगा। किसी ऐसे मध्यस्थ चर्मालय में ही खाल कमायी जाय और जूते वगैरह बनाये जायँ, जिससे बध किये हुए जानवर के चमडे का जूता पहन कर हत्या को उत्तेजना देने के घोर पाप से हम बचें। इस प्रकार सींग और हाड के गृह–उद्योग को भी चमारों में फैलाना होगा। कपडों की मिलों को चर्बी दी जाय जिससे वे कसाईखाने से चर्बी न खरीदें।

इस प्रकार अगर हमारी गोशालाओं और पिंजरापोलों का पुनरुद्धार न हो और उनका कार्यक्रम युग के अनुसार न बने, तो जीवदया या गोरक्षा आकाशकुसुम के समान है।

१४

अभिनंदनीय

घाटकूपर सार्वजनिक जीवदया खाता ने बंबई में अव्वल दर्जे के ५५० दुधार पशुओं को ले कर दूध बेंचने का धंधा शुरू करने का निश्चय किया है। इस प्रकार दूसरे जीवदया मंडलों को रास्ता दिखाने के लिए वह सराहनाके योग्य ह। जैसा कि हम पहले दिखा आये हैं, बंबई और कलकत्ते जैसे शहरों में हमारे अच्छे से अच्छे पशुओं का बहुत बडे पैमाने पर नाश किया जा रहा है। इसका सीधा कारण यह है कि वहां दूध का व्यापार केवल उन्हीं लोगों के हाथ में है जो या तो निर्धन है या जो कम से कम समय में धनी हो जाना चाहते हैं। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्। क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।' और 'लोभमूलानि पापानि।' ऐसे लोग अपने पशुओं से अच्छा व्यवहार कर ही नहीं सकते। फल यह होता है कि बिसुक जाने के बाद, सिवाय कसाईखाने जाने के, पशु और किसी काम का रह नहीं जाता। उनके बछडे बम्बई में आने पर तुरत ही मार डाले जाते हैं। इस भयानक बात का एक ही उपाय है। वह यह कि दयामंडल स्वयं दूध का व्यापार शुरू करें और उसको दयामय बनायँ। हमें उमेद करना चाहिए कि, पशुओं की औलाद का खयाल रख के इस मंडलवाले धीरे धीरे अपनी गायों का दूध बढा लेंगे, और ईमानदारी, होशियारी और किफायतशारी से अपना प्रबन्ध कर के यह दिखला देंगे कि उनकी जवानी की कमाई पर ही पशुओं की परवरिश बुढाप में भी की जा सकती है।

भैंस के घी दूध के रसिया दयाधर्मियों को

मनुष्य का ऐसा स्वभाव ही है कि अगर अपने पैरों के नीचे आग लगी हो तो वह उसे नहीं देखता मगर समुद्र पार लंका की आग बुझाने के लिए जमीन आसमान एक करने लगता है। यह सुन कर हम कांप उठते है कि विलायत में सिर्फ गाय को ही पालते हैं और बछडों में से साँड बनाने के लिए कुछ को छोड कर बाकी का बध करते हैं। किन्तु विलायत में जो दशा गाय की है वह आज ही हमारे यहाँ भैंस की है और यदि कहीं दुर्भाग्य से खेती के काम में तथा वाहनों में यंत्रों का प्रवेश हुआ तो कल्ह सबेरे ही वही दशा गाय की भी हो जायगी इस वस्तु का हमें स्वप्न में भी भान नहीं होता है।

देखिए सन् १९१६ में गुजरात में भैंसें और भैंसाओं की कितनी संख्या थी:

जिल्ला	भैंस	भैंसा	सौ भैंस पीछे प्राय: कितने भैंसे हैं
अहमदाबाद	९८,९८३	१,३४२	१.४
खेडा	११७,१०९	७६९	.७
पंचमहाल	४०,८२५	४४४	१.१
भरूच	२९,८७७	३१६	१.१
सूरत	४८,९४६	४,८९१	१०
ब्रिटिश गुजरात	३,३५,७४०	७,७६२	२.३

इसके बाद जरा पंजाब के भी आंकडे देखिए:

१९०४	१९,००,०००	६,००,०००	३१.६
१९०९	२२,००,०००	६,००,०००	२७.३

१९१४	२६,००,०००	६,००,०००	२३
१९२०	२७,००,०००	५,००,०००	१८.५
१९२३	२९,००,०००	५,००,०००	१७.२

फिर सन् १९२२-२३ में सारे हिन्दुस्तान के आंकडे ये रहे:

१,३५,३९,०००	५४,१२,०००	४०

खेद है कि दूसरे प्रान्तों के आंकडे नहीं मिल सके ।

सामान्य तौर पर जितनी पाडियां पैदा होती हैं उतने ही पाडे भी । इसलिए अगर दोनों को एक तरह पाला जाय तो जितनी भैंसें हों उतने ही भैंसे भी होने चाहिए । मगर जिस तरह विलायत में बछडे बेकार हैं उसी तरह हमारे यहां पाडे निकम्मे हैं और इसलिए वे अगर बछडों को छुरी के घाट उतारते हैं तो हम भी अपने पाडों को भूखों मार कर या किसी और तरह पर यमपुर का रास्ता दिखलाते हैं । छुरी से मारने में अगर ढोर को एक घडी के छट्ठे भाग तक कष्ट होता है तो भूखों मारने में वह कौन जाने कितने दिनों तक जीता हुआ भी मरणयातना भोगता है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि पशु को भूखों रखकर तडपा तडपा कर मारने से छुरी के घाट उतारने में विशेष दया है ।

इसलिए हम जो भैंस का घी खाते हैं सो भैंस का घी नहीं किन्तु पाडे की चर्बी होती है, और भैंस का दूध जो पीते हैं वह भैंस का दूध नहीं किन्तु पाडे का लहू और पाडे के आंसू होते हैं यह बात अक्षरशः सत्य है । और जब तक हम भैंस के घी दूध के बदले गाय के घी दूध को उपयोग में लाना शुरू नहीं करते हैं, तब तक दयाधर्म की दृष्टि से हमारा पाश्चात्य लोगों से श्रेष्ठता का दावा मिथ्या है ।

१६

पँडवें के पक्ष में

"भारत कर्म्मभूमि है, और सब देश भोगभूमि है" "देवता भी भारत में जन्मने को तरसते हैं" "भारती सन्तति से जगत के सब मनुष्य धर्म्म सीखें" इत्यादि इत्यादि आत्मश्लाघा की बातें कह कर हम अपने हाथों अपनी पीठ ठोंकते हैं। परन्तु धार्म्मिकता और बडप्पन का घमंड रखते हुए भी पशुओं के प्रति करुणा और दया दिखलाने में हम बहुत पीछे हैं। सच्ची बात तो यह है कि पशुओं को पकड कर पालने और उनका दूध ले लेने और उन से काम लेने का अधिकार मनुष्यों को कभी था ही नहीं। और आदर्श गोरक्षा तब तक असंभव है जब तक मनुष्य केवल फलाहारी नहीं बन जाता, दूध और अन्न खाना छोड नहीं देता या कम से कम दूध खाना, क्योंकि शायद अन्न केवल खेत फोड कर ही पशुओं की सहायता के बिना ही उत्पन्न किया जा सकेगा। लेकिन यह आदर्श तो बहुत दूर है, जिसकी प्राप्ति की आशा सत्ययुग में ही की जा सकती है। इस बीच में हम केवल यही देखने की कोशिश कर सकते हैं कि जिन जानवरों को हमने

पालतू बना लिया है उनके साथ जितना अच्छा व्यवहार संभव हो किया जाय। इस दृष्टि से अंग्रेजी भारत में भिन्न भिन्न जाति के गोरुओं की कुल संख्या का हम विचार करें। सन् १९२२-२३ के अंक ये हैं:

साँड	५७,०५,०००
बैल	४,३६,२१,०००
गाय	३,७१,८८,०००
बछडे	३,०७,४०,०००
भैंसा	५४,१२,०००
भैंस	१,३५,३९,०००
पँडवे	१,००,१५,०००
कुल	१४,६२,२०,०००

पाठक को पहली निगाह में (१) बैलसाँड और गायों के बीच, (२) भैंसा और भैंस के बीच संख्या का बडा भारी भेद देख पडेगा। नियमानुसार, बछडे और बछडियां, पँडवे और पँडियां, बराबर संख्या में ही पैदा होती हैं। इसलिए इस भेद का अर्थ यह होता है कि भूखों या किसी दूसरी तरह हमने १,२१,००,००० से अधिक गायों और ८०,००,००० से अधिक भैंसाओं को मार डाला है। इन अंको से हम तुरत ही भारतवर्ष की महान् समस्या के सामने पहुँच जाते हैं।

अगर हम औलाद ऊपर ध्यान दे कर और अच्छा भोजन दे कर गायों का दूध बढा सकें और साथ साथ उसके दूध में मक्खन की मात्रा भी बढा सकें तो गायों की रक्षा हो सकेगी। भैंसे का प्रश्न इस से अधिक कठिन है। सच्ची बात तो यह है कि

भैंस को हमें पालतू बनाना ही नहीं चाहिए था क्योंकि जिस प्रकार गाय के बछडे यानी बल के लिए हम काम ढूँढ सकते हैं, और वह तो गाय से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है, वैसे ही हम भैंस के पँडवे के लिए उतनी आसानी से काम नहीं निकाल सकते। बहुत ही तर या जलमय देशों को छोड कर खेती के काम में ओर कहीं भी भैंसे का उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सुस्त होता है, बहुत पानी चाहता है और गर्मी नहीं सह सकता। महिष की इस अनुपयोगिता के कारण ही देवी के आगे उसका बलिदान करने लगे। अगर यह उपयोगी होता तो कभी भी इसे बलि नहीं चढाया जाता। कहावत चली आती है कि दान की बछिया के कोई दांत नहीं गिनता क्योंकि दान वा बलिदान आदि के लिए लोग निकम्मी चीज ही प्रायः चुन कर देते हैं। जैन साहित्य हमें बतलाता है कि महावीर स्वामी के समय में राजगृह में एक कसाई था जो ५०० भैंसे रोज काटता था। गोंडल के एक आधुनिक जैन साधु श्री खोडाजी महाराज अपने एक चाबखे (व्यंग नीतिकाव्य) में श्राविकाओं के प्रति कहते हैं:

'पाडी वाछडियोने दूध पीवरावो पाडा ने वाछडाने वारी।'

अर्थात् 'पँडियाँ और बछियाओं को तो दूध पिलाते हो और पँडवों और बछडों को भूखों मारते हो।'

जरूरत तो इसी बात की है कि लोगों की वह रुचि ही बदल जाय, जिस रुचि से गाय के दूध की अपेक्षा भैंस के दूध को लोग अधिक पसन्द करते हैं। मगर जब तक यह

परिवर्तन नहीं होता है तब तक, पँडवा ही भैंस के दूध के प्रेमियों की दया का सब से बडा अधिकारी है। पँडवों का विचार पहले करें। उनकी रक्षा पहले करें। कुत्ते, चिडियां, चींटियां, रोगी पशु आदि की पीछे। रावण के विषय में कहा जाता है कि उसके लिए यमराज भैंसे पर पानी लाद कर लाता था। व्यापार मंडली की किसी यात्रा के वर्णन में हेमचन्द्र लिखते हैं कि लोगों के पीने के लिए भैंसे पानी ढोते थे। उनको देख कर मालूम होता था कि मानों श्याम मेघ आकाश से उतरे आ रहे हों।

महाकाया महास्कन्धा महिषास्तोयवाहिनः
महीप्राप्ता इवाम्भोदा जनानां चिच्छिदुस्तृषाम् ॥

पुरुषचरित्र । १-१-७० ॥

भैंसे के उपयोग के लिए, पानी ढोने का काम सब से अधिक उपयुक्त हैं। अगर कोई दूसरा भी काम होवे तो दयाशील सज्जन उसका पता लगावें।

१७

पँडवों का दुर्भाग्य

श्री काकासाहेब कालेलकरने चिंचवड से और चीजों के साथ साथ एक मराठी दन्तकथा भी लिख भेजी थी, जिस से मेरे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि जब लोगों को भैंसा रखना बोझ मालूम पडने लगा, तो उसका नाश करने के लिए उसे बुरे बुरे नामों से पुकारने लगे। एक पुरानी मराठी कहावत है

गाय गायत्री। महिषी सावित्री।
बैल ब्राह्मण। रेडा पापी॥

'गाय गायत्री है और भैंस सावित्री। बैल ब्राह्मण है और भैंसा पापी जीव।'

इसके अलावा एक दन्तकथा प्रचलित है कि दक्षिण के गांवों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी पहले जन्म में ब्राह्मण की लडकी थी। ब्राह्मण ने एक ऐसे आदमी को उसे विवाह दिया जो चारों वेदों में निष्णात था और सभी प्रकार से ब्राह्मण सा मालूम होता था। उस लडकी को पीछे चल कर पता चला कि उसका पति अंत्यज जाति का था। लडकपन में

किसी ब्राह्मण के घर झाड़ू देते देते उसने वेदमन्त्र सुन सुन कर याद कर लिये थे। सुन्दर और बुद्धिमान् होने के कारण उसने काल पा कर ब्राह्मणोचित सब कर्म और संस्कार इत्यादि भी सीख लिये और अच्छा ब्राह्मण बन गया। जब लड़की को इसका पता चला तब अपनी अपवित्रता का विचार कर उसका दिल टूट गया। वह सीधे अपने पिता के पास पहुँची और उनसे पूछा कि अगर कोई मिट्टी का बरतन अपवित्र हो जाय तो उसे कैसे शुद्ध करना चाहिए? उसके सवाल का सही अर्थ न जान कर पिता ने सीधा जवाब दिया कि मिट्टी का बरतन अशुद्ध होने पर केवल आग में जला कर ही शुद्ध बनाया जा सकता है। लड़की घर लौट आयी और चिता सजा कर उसी में जल मरी। अपने इस सत्य के प्रताप से वह दूसरे भव में लक्ष्मी हुई और अब घर घर पूजी जाती है। वह ब्राह्मण मरने पर भैंसा हुआ। इसीलिए हर साल लक्ष्मी को भैंसे की बलि चढ़ायी जाती है।

१८

बछड़ों को बधिया करना

हम लोगों के जीवन में एक विचित्र विरोध देखने में आता है, जो बहुत कर के देश में ढोरों की आजकल की बुरी हालत के लिए उत्तरदायी है। लोग ऐसा मानते हैं कि अपनी गायों के बछडों को बधिया करने में पाप लगता है। मगर तौभी पेशेवर पशुपालकों के हाथ से बधिया बैल खरीदने या अपने खेतों में जोतने में वह कोई पाप नहीं समझते। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि कोई मांसाहारी कहे कि जब मैंने खुद जानवर नहीं मारा और मांस बाजार से खरीद कर लाया हूँ, तब जानवर मारने का मुझे कोई पाप नहीं लगता। जानवर इसलिए मारे जाते हैं कि मांस, खाल वगैरह की माँग है। अगर यह माँग बन्द हो जाय तो जानवरों का मारा जाना भी रुक जायगा। इसलिए जानवरों के मारने के पाप का सब से अधिक हिस्सा मांस खानेवालों और चमडा व्यवहार करनेवालों को ही मिलेगा। उसी प्रकार पेशेवर पशुपालक बछडों को इसलिए बधिया करते हैं कि बधिया बैलों की माँग है और अगर माँग न रहे तो बधिया करना भी बन्द हो जायगा। इसलिए बधिया कराने का पाप बधिया बैल खरीदनेवालों को ही विशेष कर लगेगा—हां, वे भले ही अपने को धोखे में रखें कि हमें उस पाप से कुछ मतलब नहीं है।

इसलिए एक सीधा खरा आदमी तो दो में से एक रास्ता पसन्द कर लेगा। अगर वह समझता है कि बधिया करना पाप है और उसे इस पाप से सम्पर्क न रखना चाहिए तो वह अपने खेत पर बिना बधिया किये हुए बरध यानी साँडों से ही काम

लेगा । अगर वह यह समझता है कि बधिया करना पाप तो है मगर बिना यह पाप किये काम ही न चलेगा तो उसे अपने घर पर ही बछडों को बधिया कराने में कुछ उजुर नहीं होगा। गाय की आज ऐसी दुर्दशा होने का कारण बहुत हद तक किसानों के यह, और इसी तरह के और भी, भ्रम ही हैं। किसान अपने खेतों पर बधिया बरध जोतेंगे मगर घर की गाय के बछडों को बधिया न करेंगे। फल यह होता है कि अपने घर पर सस्ते बैल तैयार करने के बदले बाहर से उन्हें भारी भारी दाम दे कर बैल खरीदने पडते हैं। इसलिए उन्होंने गायें रखना छोड दिया है। कुछ हिस्सों में तो हालत यहां तक पहुँच गयो है कि गांव में चूंके सभी कोई भैंसें ही रखते हैं, इसलिए अगर एक आदमी गाय रखता है तो चरवाहा उसे चराने से इनकार करता है क्योंकि भैंस की बनिस्बत गाय की सेवा कठिन होती है।

किन्तु, कोई बधिया बरध रक्खे या बेबधिया, मगर अपने घर पर ही गाय रख कर बैल पैदा कर लेना चाहिए। अगर वह गाय नहीं रखता है तो दूध के लिए उसे भैंस रखनी पडती है और बहुत दाम दे कर बैल मोल लेने पडते हैं। इससे दाम तो दुगना लगता ही है, पाप भी दुगना लगता है। यह साफ है कि अगर कोई आदमी अपने घर पर गाय रखता है तो उसे हर चौथे साल एक जोडी बैल बहुत सस्ते में मिल जाते हैं। दूसरी तरफ अगर वह भैंस रखता है तो उसे उसके पँडवों को मारने का पाप तो लगता ही है, गाय न पालने का पाप भी लगता है, क्योंकि आज जो गाय के पक्ष में नहीं हैं वह उसके विरुद्ध हैं।

१९

गोरक्षा का राजमार्ग

१

इस देश में गायों के कसाईखाने जाने का खास कारण यह है कि गाय पालने में घटी होती है। आज हम इतने गरीब हो गये हैं कि अपने बच्चों को भी भर पेट खिला नहीं सकते, लाखों बेकार ढोरों को पालने की तो बात ही क्या? गोवध रोकने का सब से अच्छा उपाय यह है कि गायों का दूध बढाया जाय, और दूध में मक्खन का परिमाण बढाया जाय यानी ऐसी स्थिति लायी जाय कि गोपालन से भी चार पैसे मिल सकें। जब यह बात हो लेगी तब तो कसाई भी गाय मारने के बदले पालने लगेगा क्यों कि गाय पालने में ही तब अधिक नफा रहेगा। हमारी राष्ट्रीय शक्ति एक तो आप ही बहुत कम है। अब बेकार बल्कि हानिकारक झगडों में उसे खराब करने के बदले अगर हम अपनी वह शक्ति गोपालन और गो-सुधार के रचनात्मक कार्य में लगावें तो क्या ही अच्छा हो। जब यह काम पूरा हो लेगा, तब हम देखेंगे कि गाय ने अपनी रक्षा अपने आप ही कर ली है, उन बाहरी सहायताओं की उसे जरूरत नहीं रह गयी है जिनसे जितना लाभ पहुँचता है, उतनी ही हानि भी पहुँचनी संभव है।

अगर गो-सुधार का यह रचनात्मक कार्य हमें करना है तो अमेरिका के संयुक्त राज्यों में गो-सुधार के इतिहास से सहायता लेना लाभदायक होगा। वहां पर तो पशुपालन में उन लोगोंने कमाल कर दिखाया है। जैसे कि पिछले ७५ वर्षों में, जितने दिनों के अंक हमें मिलते हैं, हम देखते हैं कि वहां की गायों का सालाना औसत दूध सन १८५० में १,४३६ पाउंड (१ पाउंड=३९ तोले) से बढ कर सन १९२५ में ४,५०० पाउंड से भी बढ गया है यानी पौन शताब्दी में वहां की गायों का दूध तिगुने से भी अधिक बढ गया है। टी. आर. पर्टल के 'गोपालन व्यवसाय का इतिहास' में से मैं नीचे के अंक देता हूँ:

संयुक्त राज्य अमेरिका में फी गाय का सालाना औसत दूध

साल	पाउंड	साल	पाउंड
१८५०	१,४३६	१९१८	३,९३६
१८६०	१,५०५	१९१९	३,६००
१८७०	१,७७२	१९२०	३,६२७
१८८०	२,००४	१९२१	३,९४५
१८९०	२,७०९	१९२२	४,०२१
१९००	३,६४६	१९२३	४,२६०
१९१०	३,११३	१९२४	४,३६८
१९१७	३,७१६	१९२५	४,९३५*

सन १९२३ तक संयुक्त राज्य में किसी एक गाय का एक साल में अधिक से अधिक दूध ३७,३८१ पाउंड और मक्खन १,२१८ पाउंड हुआ था।

* 'यह अंक बहुत अधिक जान पड़ता है। शायद ४,५०० पाउंड ज्यादह सही होगा'—टी. आर. पर्टल.

२

और अमेरिका वालों की इस आश्चर्यजनक सफलता का रहस्य क्या है ?

पहले तो यह कि वे अपनी गोशालाओं के लिए साँड चुनने में बडी सावधानी रखते हैं। उन्होंने इस कहावत का रहस्य खूब समझ लिया है, कि साँड की कीमत आधी गोशाला की कीमत के बराबर होती है। फल यह हुआ है कि उनकी गायों का दूध बढता गया है, और उसमें मक्खन का परिमाण भी बढता गया है।

क्लैरेन्स एच. एकल्स साहेब की किताब ' गोशाला के ढोर और उनका दूध ' में से साँड की बदौलत गोशाला में सुधार के कई उदाहरण दिये जाते हैं।

आयोवा की प्रयोगशाला में १३ बांगड़ू या निकम्मी गायें लायी गयीं जिनमें फी गाय सालाना औसत ३,९९१ पा० दूध और १८७ पा० मक्खन का पडता था। जातिवन्त साँडो से पैदा उनकी १३ बछडियों का सालाना औसत ५,५५६ पा० दूध और २५३ पा० मक्खन का पडा यानी माता से पुत्री का दूध सैकडे ३९ बढ गया। अब तीसरे पुश्त में ३ हिस्सा नया खून और एक हिस्सा पुराना कहा जायगा। तीसरे पुश्त की पांच गायों का औसत सालाना ८,४०१ पा० दूध और ३५८ पा० मक्खन का पडा। दादी के सौ सेर दूध की जगह पर नातिनी २१० और मक्खन १०० सेर के बदले १९० सेर देने लगी।

मिन्नेसोटा की प्रयोगशाला में १९ मामूली गायें औसत ४,५७० पा. दूध और १९६ पा. मक्खन देती थी। उसकी बछडियों ने औसतन ५,०२८ पा. दूध और २५१ पा. मक्खन

दिया । अच्छी जाति के सॉंड के मेल से बछडियों का मक्खन ५५ पा. या सैकडे ३० बढ गया ।

जर्सी जाति के सॉंड चिलमार्क्स मे किंग की दश पुत्रियों का औसत मक्खन उसी दशा में अपनी माताओं के औसत से ११९ पा. बढ गया, यानी मक्खन के बाजार भाव से बछडियों से अपनी माताओं की बनिस्बत ६० डौलर की अधिक आमदनी हुई ।

जातिवन्त सॉंडो के उपयोग से कैलिफोर्निया की गोशाला में ५,८१८ पा. के औसत से बढ कर वहां की गायों का दूध १०,००० पा. हो गया ।

मेरीलैन्ड की एक सॉंड समिति के हिसाब के अनुसार २१ गायों का फी गाय औसत सालाना दूध ५,५६० पा. और मक्खन २१९ पा. पडता था । उन्हीं का जातिवन्त सॉंडों से संयोग कराने पर जो बछडियां हुई उनका औसत सालाना दूध ६,५२३ पा. और मक्खन २६३ पा. हुआ ।

लेक काउन्टी इल्लिन्वाय में जातिवन्त सॉंडों से काम लेने के नतीजे नीचे दिये जाते हैं :

जातिवन्त सॉंडों के उपयोग का फल

सॉंड	गोशालाओं की संख्या	गायों की संख्या	गाय पीछे दूध की सालाना बिक्री
सॉंड और गाय दोनों जातिवन्त	५६	९४१	२८४ डौलर
५ साल या ज्यादह समय से जातिवन्त सॉंड	९५	१,६१०	२६७ ,,

२ या ४ साल से			
जातिवन्त साँड	१२५	२,०९८	२२१ डौलर
अर्धजातिवन्त या निकम्मे साँड	२१४	३,१६०	१७३ ,,

कितने साँड वछडी को दूधशक्ति दे सकते हैं और कितने नहीं। इसका पता मिस्सौरी विश्वविद्यालय की गोशाला के नीचे लिखे अंकों से चलेगा।

साँड	सब ब्यान की औसत माता	पुत्री	अन्तर
मिस्सौरी रायटर	पा.	पा.	
दूध	५,३८०	४,३८१	(–९९९)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	४.३५	४.९३	
मक्खन	२३४.	२१६	(–१८)
मेरीडेल का लोर्न			
दूध	४,५५९	६,०५०	(+१,४९१)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	४.८५	४.८१	
मक्खन	२२१	२९१	(+७०)
मिस्सौरी रायटर, तीसरा			
दूध	४,७७५	८,००५	(+३,२३०)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	४.९८	४.८०	
मक्खन	२३८	३८४	(+१४६)
डेजी का प्रिन्स ओफ सैंट लैम्बर्ट			
दूध	५,३६२	३,९३२	(–१,४३०)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	५.०७	५.०३	
मक्खन	२६९	१९८	(–७१)

ब्राउन बेसी का रेजिस्ट्रार

दूध	६,०६९	४,६०७	(−१,४६२)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	४.९४	४.९७	
कुल मक्खन	३००	२२९	(−७१)

सुल्ताना का वर्जिनिया लैड

दूध	५,३४९	७,७२२	(+२,३७३)
सौ पाउंड दूध में मक्खन	५.१७	५.७६	
कुल मक्खन	२७७	४४५	(+१६८)

एम्ब्लागार्ड ट्रिटोमिया होमस्टेड नाम के एक विख्यात सँाड की दश पुत्रियों और उनकी माताओं के दो साल की उम्र में औसत दूध और मक्खन में अंतर देखिए :

	माताएँ	पुत्रियां
कुल दूध	९,५९४ पा०	१३,५०४ पा०
सौ पाउंड दूध में मक्खन	३.२१ ,,	३.४७ ,,
कुल मक्खन	३०८ ,,	४६९ ,,

३

दूसरे, अमेरिकावाले अपनी गायों को खिलाने पिलाने में भी बडी चौकसी रखते हैं । गोशाला के लिए जितना महत्त्वपूर्ण सांड पर ध्यान देना है, उतना ही खिलाने पिलाने पर भी । खूराक केवल काफी ही देने से नहीं चलेगा, बल्कि वह 'सम' भी होवे यानी एक तरफ तो प्रोटीन और दूसरी तरफ कार्बोहाइड्रेट्स और फैट पूरे रहने चाहिये ।

'गोशाला की गायों की खूराक और प्रबंध' नामकी अँगरेजी किताब में से नीचे लिखे दो प्रयोगों के फल दिये जाते हैं ।

मेरीलैण्ड प्रयोगशाला ने ८ गायें उनके मालिक के पास एक साल रक्खी। फिर दूसरे साल वे ही गायें प्रयोगशाला में ला कर रक्खी गयीं और यहां पर उनके खिलाने पिलाने का सुप्रबन्ध किया गया। नीचे की सारिणी से इस सुप्रबन्ध से जो लाभ हुआ उसका पता चलेगा:

गाय की संख्या	पहले साल कै पाउंड दूध दिया	दूसरे साल कै पाउंड दूध दिया	पहले साल जिस हफ्ते अधिक से अधिक दूध दिया उस हफ्ते का रोजाना औसत	दूसरे साल जिस हफ्ते अधिक से अधिक दूध दिया उस हफ्ते का रोजाना औसत
१	४,००४	६,०९२	२७	४०
२	४,१२२	५,०९३	२१	३३
३	५,१९२	६,१६३	२७	४०
४	४,५३७	६,१३४	२७	४८
५	६,०९७	६,९९५	३१	३५
६	४,०३५	७,९९५	२७	५७
७	६,३५७	६,८२८	३८	३३
८	४,६५३	५,४६५	२४	३७

ऐसा ही प्रयोग न्यूयोर्क की प्रयोगशाला में भी किया गया था। कौर्नेल यूनिवर्सिटी के पास की किसी गोशाला में से गायें चुनी गयी थीं। एक साल तो गायें अपने मालिक के ही पास रहीं और वे ही उन्हें खिलाते पिलाते रहे मगर उनके दूध का हिसाब प्रयोगशाला खुद अपने आदमी भेज कर रखवाती थी। दूसरे साल वे प्रयोगशाला में लायी गयीं और उन्हें 'सम' भोजन दिया जाने लगा, जिनमें शरीर के लिए आवश्यक

मसालों का ठीक ठीक समावेश था। नीचे के आंकडों से दोनों वर्षों के औसत हफ्तावारी दूध का पता चलेगा:

औसत हफ्तावारी दूध

गाय की संख्या	पहले साल	दूसरे साल	फी सैकडे बढती
१	८९	११२	२५
२	८३.९	१२१.६	४४.९
३	८३	११९	४४
४	८८	१२२	३७
५	१०६	१६२	५२
६	८४	१२०	४१
७	१२४	१७५	४१
८	११३	१४९	३१
९	८५	१३६	६०
१०	१०३	१८७	८०

४

अमेरिका से हम लोग अभी और बहुत सी बातें सीख सकते हैं, मगर एक और विषय पर विचार करके हम यह लेख समाप्त करेंगे।

अमेरिकावाले खाद की रक्षा अत्यन्त सावधानी से करते हैं और उसका अच्छा से अच्छा प्रयोग जिस तरह कर सकते हैं करते हैं। मिन्नेसोटा प्रयोगशाला के स्नाइडर को खाद का प्रयोग करने बाद फी टन दो से तीन डौलर तक का नफा होने लगा। यह अंक पांच सालों के नाज में वृद्धि का औसत निकाल कर निकाला गया है। पर्ड्यू प्रयोगशाला के वियाङ्को

लिखते हैं कि "अगर खाद का प्रयोग ठीक ठीक किया जाय तो सामान्यतः खेत के उपजाऊपने के हिसाब से फी टन दो से आठ डौलर तक की आमदनी बढायी जा सकती है और जिन सात खेतों पर प्रयोग कर के देखा गया था उनका औसत आता है फी टन पांच डौलर की बढती का।" ओहियो की प्रयोगशाला के औसत अंक आते हैं ३.३१ यानी कोई ३$\frac{१}{३}$ डौलर फी टन की बढती।

स्वीट्सर दुधार गायों के गोबर मूत्र की खाद के उपजाऊपन का अध्ययन कर के इन नतीजों पर आये हैं:

"जितना गाय को खूराक में मिलता है उसमें से

१. गोबर में नत्रजन $\frac{१}{३}$ भाग, फस्फोरिक एसिड $\frac{३}{४}$ भाग, और पोटाश $\frac{१}{२}$ अंश होता है।

२. मूत्र में $\frac{१}{२}$ नत्रजन, फस्फोरिक एसिड प्रायः बिलकुल ही नहीं और $\frac{३}{४}$ हिस्सा पोटाश होता है।

३. दूध में $\frac{१}{२}$ भाग से भी कम नत्रजन, $\frac{१}{४}$ फस्फोरिक एसिड और $\frac{१}{१०}$ पोटाश, यानी खूराक का $\frac{१}{२}$ हिस्से से भी कम मसाला खाद की दृष्टि से होता है।

४. अगर मूत्र को जाया जाने दिया जाता है तो कोई ६३ फी सैकडे यानी गाय की खूराक का खादवाला आधा से भी अधिक हिस्सा नष्ट हो जाता है।

प्रो० एकल्स १,००० पाउण्ड दूध देनेवाली गाय के दिये खादर की मिकदार देते हैं और एक एक पाउण्ड नाइट्रोजन, फस्फोरिक एसिड, पोटाश और सौ पाउण्ड सेन्द्रिय पदार्थ की

क्रमशः १५ सेन्ट, ४ सेन्ट, ५ सेन्ट और २० सेन्ट के हिसाब से कीमत भी लिखते हैं:

	मूत्र		गोबर		कुल	
	पाउण्ड		पाउण्ड		पाउण्ड	
साल में कै पाउण्ड हुआ	८,०००		१८,०००		२६,०००	
सूखा मसाला	५६०		३,६००		४,१६०	
नाइट्रोजन	६४		६३		१२७	
फस्फोरिक एसिड	लेशमात्र		३६		४०	
पोटाश	८०		४५		१२५	
पौधे के लिए पोषक	डौलर	सेन्ट	डौलर	सेन्ट	डौलर	सेन्ट
वस्तुओं का मूल्य	१३	६०	१३	१०	२६	७०
सेन्द्रिय पदार्थ का मूल्य	१	१०	७	२०	८	३०
कुल व्यापारिक कीमत	१४	७०	२०	३०	३५	०
एक टन खाद का मूल्य	३	६५	२	२५	२	७०

इससे जान पडता है कि गाय के मूत्र में, गोबर की अपेक्षा कहीं अधिक, पौधों के लिए पोषण अथवा खाद होता है। अगर्चे कि वजन में गोबर से मूत्र आधा होता है मगर उसमें गोबर के बराबर ही नाइट्रोजन होता है, और कुल १२५ पाउण्ड पोटाश में दो तिहाई से जरा सा कम (८० पाउण्ड) तो मूत्र में ही मिलता है। पौधों के लिए पोषक पदार्थ तो मूत्र में अगर १३ डौलर ६० सेन्ट का होता है तो गोबर में केवल १३ डौलर १० सेन्ट का ही पाया जाता है। और एक टन मूत्र के खाद की कीमत ३ डौलर ६५ सेन्ट होती है यानी उतने ही गोबर की कीमत से १ डौलर ४० सेन्ट अधिक। इसी लिए मूत्र को नष्ट होने से बचाना इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

न्यू जर्सी की प्रयोगशाला में देखा गया कि जब गोबर बाहर मैदान में १०९ दिनों तक छोड दिया गया तो उसमें से नाइट्रोजन फी सैकडे साढे सैंतीस घटा, फौस्फोरिक एसिड फी सैकडे ५२ और पोटाश ४७ घटा। गोबर और मूत्र मला कर मैदान में छोड देने पर उतने ही दिनों में नाइट्रोजन फी सैकडे ५१, फौस्फोरिक एसिड फी सैकडे ५१ और पोटाश फी सैकडे ६१ घट गया। चार महीनो से भी कम ही मैदान में पडे रहने देने पर खाद की कीमत पहले से आधी भी नहीं रही। एक गाय का दिया गोबर यों मैदान में सूखने को छोड देने पर घटी साढे बारह डौलर सालाना आती है। इस कमी का, और खास कर नाइट्रोजन में कमी का एक कारण यह बतलाया जाता है कि खाद में उफान आने या खमीर उठने से अमोनिया निकल जाती है और दूसरी चीजें और भी अधिक घुल जाती हैं। खाद का संचय करने के लाभ कौर्नेल प्रयोगशाला के एक प्रयोग के नतीजे से दिखलाये गये थे। एक बडे बकस में ५ टन गाय के गोबर और मूत्र की खाद फुलके भर कर मैदान में एप्रिल से अक्तूबर महीने तक छोड दी गयी। इस बीच उसके कुल वजन में ४९ फी सैकडे की घटी हुई, नाइट्रोजन फी सैकडे ४१ घटा, फस्फोरिक एसिड १९ फी सैकडे और पोटाश फी सैकडे ८ घट गया।

आदिपर्व

१

प्राचीन समय में साँड की महिमा

पश्चिम के देशों में पशु के उत्पादन का बहुत खयाल रखा जाता है। प्राचीन समय में हमारे में भी लोग वैसी ही सँभाल रखते थे और अच्छे पशु की पैदाइश अच्छे साँड पर निर्भर है, इसलिए लोक समस्त को अच्छा सांड समर्पण करके छोडना भारी पुण्य का काम गिना जाता था।

वृषोत्सर्गादृते नान्यत्पुण्यमस्ति महीतले।

और समाजसेवा के लिए वृषोत्सर्ग के ऐसा पितृतर्पण या पितृस्मारक दूसरा कुछ नहीं मानते थे।

जले प्रक्षिप्य लाङ्गूलं तोयं यद्धरते वृषः।
दशवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः॥
कूले समुद्धृता यावच्छृङ्गे तिष्ठति मृत्तिका।
भक्ष्यभोज्यमयैः शैलैः पितरस्तेन तर्पिताः॥
सहस्ररत्नपात्रेण कनकेन यथाविधि।
तृप्तिस्तु या पितॄणां वै सा वृषेण समोच्यते॥

पशुओं का अच्छा बुरा होना साँड के गुणदोष पर निर्भर है और सांड की कीमत न केवल सारे झुंड की आधी ही, बल्कि आधी से भी अधिक समझनी चाहिए। इसलिए वृषोत्सर्ग के लिए कैसे साँड को चुनना और कैसे को त्याज्य गिनना चाहिए, इस विषय पर सविस्तर नियम बनाये गये थे। पारस्कर गृह्यसूत्र के तीसरे कांड की नववीं कंडिका का छट्ठा सूत्र इस प्रकार है—

एकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथं छादयति यं वा यूथं छादयेद् रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रो यूथे च रूपस्वित्तमःस्यात्तमलङ्कृत्य......उत्सृजेरन्।

"सांड एक वा दो रंग का होवे। लाल रंग का हो तो उत्तम। सारे झुंड में सबसे शरीर से बढा चढा होवे।"

मुखपुच्छपादेषु सर्व्वशुक्लो नीलो लोहितो वा लोहित एव वा स्यात्। एवंकारेण लोहितस्यैकवर्णद्विवर्णाभ्यां प्राशस्त्यमुच्यते। कृत्स्नं वर्गं छादयति स्वपरिमाणेनाधः करोति।

"सर्वाङ्ग में सम्पूर्ण होवे। हीन किंवा अधिक अङ्गोवाला भी न होवे।"

सर्व्वैरङ्गैः समन्वितो न पुनर्हीनाङ्गोऽधिकाङ्गो वा।

"जिसका सारा परिवार जीता हो और जो बहुत दुधार हो एसी गाय का बछडा हो।"

जीवाः प्राणवन्तो वत्साः प्रसूतिर्यस्थाः सा जीववत्सा तस्याः गोः पुत्रः पयो बहु क्षीरं विद्यते यस्याः सा पयस्विनी तस्याः बहुक्षीरायाः।

"और सारे गोल में सबसे अधिक रूपवान् हो।"

यूथे वर्गविषये रूपमस्यास्तीति रूपस्वी, अतिशयेन रूपस्वी रूपस्वित्तमः।

ऊपर के सूत्र की हरिहरविरचित टीका में हमारे जानने लायक विशेष बात दी हुई है। साँड कैसा होना चाहिए इस विषय में उन्होंने नीचे के श्लोक दिये हैं:

उन्नतस्कंधककुद ऋजुलाङ्गूलभूषणः।
महाकटितटस्कंधो वैडूर्यमणिलोचनः॥

सांड का कंधा और डील (ककुत्) ऊँचे और विशाल हों, जांघ बडी, पूँछ सीधी, और आंखें वैडूर्यमणि के समान हों।

प्रवालगर्भशृंगाग्रः सुदीर्घऋजुवालधिः।
नवाष्टदशसङ्ख्यैस्तु तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः॥

सींग की नोक मूंगे के जैसी हो, पूँछ लंबी और सीधी हो, दांत तेज हों और गिनती में आठ नौ या दस हों।

पृथुकर्णो महास्कंधः सूक्ष्मरोमा च यो भवेत्।

कान लंबे और रोंए झीने हों।

भूमौ कर्षति लाङ्गूलं पुनश्च स्थूलवालधिः॥

पूँछ जमीन तक पहुँचती हो और उसके ऊपर घने बाल हों।

नील सांड को विशेष रूप से अच्छा गिनते थे। इसके लक्षण ये हैं।

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स वृषो नील उच्यते॥

नील सांड रंग का लाल होता है और उसके पैर, मुँह, और पूंछ उजली होती हैं।

इसीसे वृषोत्सर्ग को नीलोत्सर्ग या नीलोद्वाह भी कहते हैं।

सांड तीन वर्ष का अच्छा होता है। उपादेयश्च वृषस्त्रिहायनः ।

कैसे कैसे सांडों को त्याज्य गिनते थे, उसका पता नीचे के श्लोकों से चलता हैं ।

कृष्णताल्वोष्ठदशना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये ।
अशक्तदंता ह्रस्वाश्च व्याघ्रभस्मनिभाश्च ये ॥
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसंनिभाः ।
कुब्जाः काणाश्च खञ्जाक्षाः केकराक्षास्तथैव च ॥
अत्यन्तश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा ।
नैते वृषाः प्रमोक्तव्या गृहे धार्याः कथंचन ॥

जिसके तालू, ओठ और दांत काले हों, सींग रुखडी, दांत निर्बल और कद ठिंगना हो और जो काना या कुबजा हो, ऐसे सांड नहीं छोडने चाहिए ।

आज हमें कैसे सांड चाहिए इसका ज्ञान तो हमें पश्चिम के देशों से ही लेना होगा । इस लेख का तात्पर्य केवल यही दिखला देना है कि हमारे पूर्वज इस विषय पर कितना अधिक ध्यान देते थे ।

२

बुद्ध की गोरक्षा

बुद्ध के समय में गवालम्भ की दुष्ट रीति प्रचलित थी और मालूम होता है कि गाय को अभी अभयवचन नहीं मिला था। सुत्तनिपात (चुल्लवग्ग, ब्राह्मणधम्मिकसुत्त) में यह प्रसंग आता है कि कोशल देश के कई वयोवृद्ध और धनवान् ब्राह्मण बुद्ध के पास गये और उनसे पूछा, 'आज के ब्राह्मणों में क्या सनातन धर्म का पालन होता दिखलायी पडता है?'

बुद्ध : 'नहीं।'

ब्राह्मण : 'हमें बतलाइए कि पुरातन ब्राह्मणधर्म कैसा था।'

बुद्ध : 'हे ब्राह्मणो, सुनो,

न पसू ब्राह्मणानासुं न हिरञ्ञं न धानियम्।

सज्झायधनधञ्ञासुं ब्रह्मं निधिमपालयुम्॥

पुराने जमाने के ब्राह्मण गोरू, सोना, अनाज, कुछ भी नहीं रखते थे। उनका धन धान्य जो कुछ कहो स्वाध्याय ही था। और वे ब्रह्मरूप भंडार की रक्षा करते थे।

अट्ठचत्तारीसं वस्सानि कोमारब्रह्मचरियं चरिंसु ते ।
विज्जाचरणपरियिट्ठिं अचरुं ब्राह्मणा पुरे ॥

वे ब्राह्मण अडतालीस वर्ष तक कुमारब्रह्मचर्य का पालन करते और विद्या तथा सदाचार की खोज करते थे ।

यो नेसं परमो आसी ब्रह्मा दळ्हपरक्कमो ।
स वापि मेथुनं धम्मं सुपिनन्तेन नागमा ॥

उनमें जो दृढपराक्रमी और श्रेष्ठ ब्राह्मण होते थे उन्हें स्वप्न में भी विकार न होता था ।

वे चावल, घी, तेल आदि मांग लाते और उनका होम करते थे ।

यथा माता पिता भाता अञ्ञे वापि च ञातका ।
गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसधा ॥

जिस प्रकार मा, बाप, भाई और दूसरे सगे अपने मित्र हैं, उसी प्रकार गाय हमारी परममित्र है, जिससे मृतसंजीवनी औषधियां निकलती हैं ।

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा ।
एतमत्थवसं ञत्वा नास्सु गावो हनिंसु ते ॥

गाय हमें अन्न, बल, कान्ति, तथा सुख देनेवाली है, यों जानकर ये ब्राह्मण गाय को नहीं मारते थे ।

सुखुमाला महाकाया वण्णवन्तो यसस्सिनो ।
ब्राह्मणा सेहि धम्मेहि किच्चकिच्चेसु उस्सुका ।
याव लोके अवत्तिंसु सुखमेधित्थऽयं पजा ॥

वे ब्राह्मण सुकुमार, प्रचंडशरीर, कान्तिवाले, यशस्वी तथा स्वधर्मपरायण थे । जब तक वे इस जगत् में थे, प्रजा सुखी थी ।

पर पीछे दिन पलटे। राजा को उलटा उपदेश मिला। इससे बकरी की तरह गरीब गाय जो लात से वा सींग से किसीको मारती नहीं घडा भर भर कर दूध देती है गोमेध यज्ञ में बलि दी जाने लगी।

न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गावो एळकसमाना सोरता कुंभदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान राजा सत्थेन घातयि॥

पीछे देव, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस सभी गाय की विपत्ति देख कर बोल उठे कि 'यह तो महा अधर्म है'।

ततो च देवा पितरो इन्द्रो असुररक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं निपति गवे॥

पहले तीन ही रोग थे, इच्छा, भूख तथा बुढापा; पर पशु को मारना शुरू किया इस लिए अट्ठानवे रोग हो गये।

तयो रोगा पुरे आसुं इच्छा अनसनं जरा।
पसूनां च समारंभा अट्ठानवुतिमागमुम्॥

३

विशाखा और उसका दहेज

विशाखा के पिता धनंजयश्रेष्ठी प्रथम मगधराज बिम्बिसार के राज्य में अंगदेश के भद्दियनगर में रहते थे। एक बार वहां बुद्धभगवान् के आने पर वे सहकुटुम्ब उनके शिष्य हुए थे। धनंजय सेठ अत्यन्त धनाढ्य और सुखी थे और इसलिए उन्हें अमितभोग कहते थे।

मगधराज बिम्बिसार और कौसलनरेश पसेनदि परस्पर सालेबहनोई लगते थे। कोसलराज को एक बार विचार आया कि 'बिम्बिसार के राज्य में छह अमितभोग रहते हैं और मेरे राज्य में एक भी नहीं। बिम्बिसार के पास जा कर एक महापुण्यशाली आदमी मांग लाऊँ।'

बिम्बिसार के कान में जब यह बात डाली तो उन्होंने जवाब दिया, 'मेरे किये तो कोई बडा कुटुम्ब नहीं बदला जा सकता।'

पसेनदि ने कहा, 'और म किसी को लिए बिना उठूंगा ही नहीं।'

मगधराज ने मंत्रियों के साथ विचार कर देखा और मेंडक महाश्रेष्ठी के पुत्र धनंजय सेठ को समझा-बुझा कर पसेनदि के साथ भेजा। पसेनदि की राजधानी श्रावस्ती नगरी में थी। पर राजधानी की तंगी में अपना बडा परिवार नहीं अंटेगा, इसलिए राजा की सम्मति ले कर धनंजय ने श्रावस्ती से सात योजन दूर साकेत नाम की नगरी बसायी और वहां जा रहा।

× × ×

धनंजय ने अपनी पुत्री विशाखा का विवाह श्रावस्ती के जैन मिगारसेठ के पुत्र पुण्यवर्धन के साथ किया। अपने राज्य में नये आये हुए महाजन को सम्मानित करने के लिए कोसलराज स्वयं बरात में गये। मिगार ने धनंजय से पहले ही पुछवाया, 'राजा और उनकी सेना बरात में आनेवाली है। आप इनका सेवा-सत्कार तो कर सकेंगे न?' धनंजय ने झटपट उत्तर दिया, 'एक नहीं, दश राजाओं को बुलाते आइएगा।' श्रावस्ती में चौकीदारी के लिए जितने आदमियों की ज़रूरत थी उतने को छोड कर, श्रावस्ती के सभी आदमियों को बरात में मिगार भी लेते आये। इस महाजनमंडली की स्वागतसमिति की अधिष्ठात्री विशाखा थी। धनंजय ने बरात को चार महीने रोक रक्खा।

दायजे में धनंजय ने ५०० गाडी सुवर्णमुद्रा, ५०० गाडी सोने की चीजें, ५०० गाडी चांदी के बरतन, ५०० गाडी तांबे के बरतन, ५०० गाडी खादी, ५०० गाडी घी, ५०० गाडी गुड, ५०० गाडी चावल और ५०० गाडी हल कुदाली वगैरह हथियार दिये। ५०० रथ और १५०० दासियां दीं।

अब धनंजय के मन में हुआ कि 'लँडकी को गायें दूँ।' अपने आदमियों से उन्होंने कहा, 'जाओ छोटा व्रज (गोकुल) खोल दो। एक एक कोस के अन्तर पर एक वैसे तीन नगारें ले कर खडे रहो। १४० हाथ की जगह बीच में छोड कर दोनों किनारे खडे रहो। इससे आगे गायों को मत जाने देना। जब तुम लोग ठीक खडे हो जाओ तो नगारे बजाना।' आदमियों ने ऐसा ही किया। व्रज से निकल कर गायें एक कोस पहुँचने पर नगारा बजा, फिर आधा योजन पहुँचने पर बजा, और पीछे तीन कोस पहुँचने पर बजा। चौडाई में १४० हाथ से अधिक नहीं फैलने दिया। यों लंबाई से तीन कोस और चौडाई में १४० हाथ के मैदान में एकदूसरे से देह रगडती हुई गायें ठसाठस भर गयीं। धनंजय ने कहा, 'मेरी बेटी के लिए इतनी गायें बहुत है। अब दरवाजा बंद कर दो।' यह कह कर सेठ ने दरवाजा बन्द करा दिया। कथाकार लिखते हैं कि दरवाजा बन्द करते करते भी ६०,००० और गायें, ६०,००० और बैल और ६०,००० और बछडे निकल पडे!

विशेष में इस धन के दहेज की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण दहेज के रूप में लडकी को सेठ ने दश सिखावन दिये: 'देख बेटी, ससुराल की हो कर अपने अंदर की अग्नि बाहर मत निकालना (ससुरालवालों का दोष दिखाई दे तो दूसरों के आगे उसकी बात मत चलाना); बाहर की आग भीतर मत लाना (पडोसी अगर ससुरालवालों को उलटी सीधी कहें तो घर आ कर यह न कहना कि फलां तो आपके बारे में यह कहता था); जो दे उसी को देना (कोई कुछ मँगने आवे तो तभी देना जब वह फिर लौटा दे जाय); जो न दे उसे न देना (मँगनी

की चीज जो न लौटावे उसे न देना); जो दे या न दे उन्हींको देना (सगे संबन्धी फिर कर लौटावें या न लौटा सकें, मगर तौभी उन्हें देना); ठिकाने से बैठना (सास ससुर को देख कर उठने के मौके पर बैठना नहीं); ठिकाने से खाना (बडों के खा लेने बाद खाना); ठिकाने से सोना (बडों के सोने बाद सोना); अग्नि की परिचर्या करना (बडों की सेवा करना); गृहदेवता को प्रणाम करना (बडों को देवता के समान समझना) ।'

× × ×

किसी दिन मिगार सेठ भोजन कर रहे थे । विशाखा ने उसी समय कहा:

'बाबूजी, आप रोज रोज बासी खाना क्यों कर खाते होंगे ?'

'इसे बासी कौन कहेगा बहू ? यह तो तुम मुझे गर्मागर्म रोटी के फुलके बना बना देती हो । यह बासी कैसे हुआ ?'

'देखिए बाबूजी, पूर्वजन्म के पुण्यफल से इस जन्म में आप सुखी हैं, मगर इस जन्म में कोई दानपुण्य करते नहीं । इसलिए मैं कहती हूँ कि आप पुराना ही पुण्य भोग रहे हैं ।'

× × ×

विशाखा ने एकसौ बीस वर्ष का आयुष्य भोगा। श्रावस्ती के पूर्वद्वार के आगे नौ करोड धन देकर जमीन ली और दूसरे नौ करोड लगाकर उसने पूर्वाराम नाम का बहुत बडा विहार बनाया । विहार दो मंजिला मकान था । ऊपर और नीचे की मंजिलों पर पांच पांच सौ खंड थे । विहार के वास्तु–उत्सव में विशाखा ने तीसरा नौ करोड धन खर्च किया । बुद्ध की श्राविका मात्र में कोई ऐसी न थी जो उदारता में विशाखा को पा सके । और बौद्ध-संघ की छह मुख्य भिक्षुणीओं की पंक्तिमें उसकी गिनती होती है ।

४

गोरक्षा और जैन

जैनों के उपासकदशांगसूत्र में चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के दस मुख्य उपासकों अथवा श्रावकों का वृत्तान्त दिया हुआ है। इसमें प्रधानतः तो उनका आध्यात्मिक इतिहास ही है। तौभी हर एक के पास कितनी कोटि धन और कितने गोकुल थे यह भी बतलाया गया है। दश हजार गाय को एक व्रज वा गोकुल समझते थे। इसी हिसाब से राजगृही के महाशतक और वाराणसी के चूलनीपिता के पास आठ आठ गोकुल वा अस्सी अस्सी हजार गायें थीं। चम्पा के कामदेव, वाराणसी के सुरदेव, कांपिल्य के कुण्डकौलिक तथा आलम्भिया के चूलशतक के छः छः गोकुल अथवा ६०, ६० हजार गायें थीं। वाणियग्राम के आनन्द, श्रावस्ती के नन्दिनीपिता तथा शालिनीपिता के चार चार गोकुल अर्थात् चालीस चालीस हजार गायें थीं और पोलासपुर के शकडालपुत्र के एक गोकुल अथवा दश हजार गायें थीं। महाशतक की स्त्री रेवती के दहेज में आठ गोकुल याने अस्सी हजार गायें थीं। आनन्द श्रावक ने महावीर स्वामी के पास जब श्रावकव्रत लिया था तब उसके परिग्रह परिमाण में उसका गोधन चार गोकुल या चालीस हजार गायों का माना गया था।

आज के श्रावक श्राविका इन महाजनों का देशकालानुसार यथाशक्ति अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो! जैन लोग धन के लोभ में अनाज रुई इत्यादि जीवन की आवश्यक वस्तुएं अपने हाथ में करने की कोशिश करते हैं। पशुओं के ऊपर तथा आदमी के ऊपर उपकार करने के लिए वे ढोर को अपने अधिकार में करें तो अनाज, रुई को अपने हाथ करने के पाप का कुछ प्रायश्चित्त हो जाय। एक बम्बई में ही अगर दयाधर्मी लोग बीस हजार दुधार पशु रक्खें तो इसके फलस्वरूप हर साल दस हजार से ऊपर जातिवन्त तथा जवान ढोर बच जायँ। पज्जूसण (जैनों का एक पर्व) के दिन ढीलेपन के साथ दस पांच जीव छुडाने जाना वैसा ही है जैसे सिर काट कर बाल की रक्षा करना। शोभा तो इसमें है ही नहीं। इससे केवल कसाई को ही उत्तेजना मिलती है और हमारे हिस्से अधर्म और आत्मवंचना आती है। सच्ची रीति से ढोर के सारे बाजार पर कब्जा कर कसाई का धन्धा ही उखाड फेंकना चाहिए। निर्दय ग्वाला ढोर को बरबाद कर कर के कसाई को सौंपा ही करता है और पीछे से हम उसे छुडाने की बेकार कोशिश करते हैं। यह तो माल ले कर चोर के भाग जाने पर दिया जलाने की सी बात हुई। इस तरह इस दुष्ट परंपरा का किसी समय अन्त ही न होगा। इससे तो अच्छा है कि ढोर को एक बार हाथ में ले कर उसके बाद निश्चिन्त हो कर बैठ जायँ। पैबंद लगाने से पार न लगेगा। काम तो यों करना चाहिए कि फिर करने को कुछ रहे ही नहीं।

५

महालक्ष्मी कहां रहती हैं

महाभारत (१३ अनुशासन पर्व, अध्याय ८२) में भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को ' पुरातन इतिहास ' सुनाया है कि एक समय में लक्ष्मी ने सुंदर शरीर धारण करके गायों के गोल में प्रवेश किया। उनके अप्रतिम रूप से विस्मित होकर गायें बोलीं :

" हे देवि, तुम कौन हो ? आप कहां से आयी हो और कहां जाओगी ? "

लक्ष्मी ने कहा, " मैं जगत् की कान्ति हूँ और मेरा नाम श्री है। मैंने दैत्यों को त्याग दिया इस लिए उनका नाश हुआ। और देव तथा ऋषि जो दीप्तिमन्त होते हैं और मौज करते हैं यह भी मेरा ही प्रताप है। तुम्हारे साथ मैं हमेशा रहना चाहती हूँ और इस लिए यह विनय करने आयी हूँ कि मुझे अपने साथ रहने दो। "

गायें — " तुम तो अध्रुव चपल और सामान्या हो। तुम्हारा कोई ठौर ठिकाना नहीं है। तुम कहीं जम कर नहीं

ठहरती हो। तुम्हारा चित्त घूमता ही रहता है। इस लिए तुमसे हमारा कोई मतलब नहीं है। तुम्हारा जी जहां चाहे वहां जाओ।"

लक्ष्मी: "मुझे यों छोड कर तुम लोग ठीक नहीं करती हो। लोग जो कहते हैं कि जो बिनबुलाये जाता है उसका अपमान होता है, सो ठीक ही है। देव दानव गंधर्व मुझे पाने के लिए कैसा उग्र तप करते हैं! मेरी इतनी बात तो स्वीकार करो, मेरी अवगणना मत करो।"

गायें: "हे देवि, हम तुमको छोडतीं या तुम्हारी अवगणना नहीं करतीं हैं। किन्तु तुम चलचित्त हो इस लिए हम तुम्हारा वर्जन करतीं हैं। बहुत बोलने से क्या लाभ? तुम्हारी जहां इच्छा हो जाओ। तुमसे हमारा कोई काम नहीं है।"

लक्ष्मी: "हे गायें, तुम अगर मुझे लौटा दोगी तो विश्व में मनुष्य मात्र मेरी अवज्ञा करेंगे। इस लिए मुझपर दया करो। मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ तो मुझे अपने किसी अंग में बसने दो।"

गायें: अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनी ॥
शकृन्मूत्रे निवसतां पुण्यमेतद्धि नः शुभे ॥

"हे यशस्विनि, तुम्हारा मान हमें अवश्य रखना चाहिए। इस लिए तुम हमारे पवित्र गोबर और मूत्र में निवास करो।"

इस भांति गायों के साथ समय (ठहराव) कर के लक्ष्मी वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

× × ×

ऐसा जान पडता है कि मानो यह कथा हमारी वर्तमान परिस्थिति को ही देख कर लिखी गयी हो। धन कुछ सोना, रूपा, हीरा,

मानिक, मोती नहीं है, बल्कि सच्चा धन तो धान्य (अनाज) ही है और धान्य की उत्पति मुख्यतः खाद और उसमें भी गाय के गोबर और मूत्र पर ही निर्भर है। इस लिए यह कहा कि गोबर और गोमूत्र में लक्ष्मी निवास करती हैं। इससे शिक्षा इतनी ही लेनी है कि हमें गोबर और गोमूत्र को तुरत ही जमीन में गाड देना चाहिए, जिससे हमपर धान्यलक्ष्मी की कृपा बनी रहे। किन्तु अगर हम गोबर के उपले पाथ कर जला देवें और गोमूत्र को नुकसान जाने देवें तो धान्यलक्ष्मी हमसे रुष्ट हो जायँगी। उपले जलाना तो वैसी ही मूर्खता और उडाऊपना है जैसे कि कोई मूर्ख साहूकार दश पाँच सौ रुपयों के नोटों को बीडी जला कर पी लेवे। इस लिए गोबर से तो हम खाद बनावें और इंधन के लिए बबूल या किसी खास जाति के वृक्ष रोपें।

६

भीष्मपितामह की गोस्तुति

महाभारत में भीष्मपितामह के मुख से अनेक अध्यायों में गोस्तुति करायी गयी है। उनमें से निम्नलिखित श्लोक उतारे गये हैं:

पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा।
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृङ्गैर्वालैश्च भारत ॥ १०१–३९ ॥

दूध, दही, घी, गोबर मूत्र, **चमड़ा, हड्डी, सींग तथा बाल** इन सब वस्तुओं के द्वारा गाय मनुष्य जाति पर उपकार करती है।

[भीष्म से भी अधिक चतुर गाय के आजकल के अंधभक्त कहते हैं कि गाय मर जाय तो उसे जमीन में गाड देना चाहिए। किन्तु ये लोग यह नहीं जानते कि उनकी सिखावन के अनुरूप व्यवहार हो तो गायमाता के 'रामनाम सत्य' बोल जायँगे, सभी गायें कसाई के हाथों जायँगी और उनके पास गाडने के लिये गाय रह ही नहीं जायगी। कहा जाता है कि जीते हुए हाथी एक लाख का होता है तो मरने पर सवा लाख का। यह उक्ति इस युग में तो ढोर पर भी लागू पडती है।

ढोर के शरीर से पैदा होनेवाली वस्तुओं का उपयोग आज कल बहुत बढ गया है। गाय का सच्चा स्वार्थ समझ कर अगर गोसेवक मरे हुए ढोर के शरीर में से ये वस्तुएँ पूरी करें तो ठीक है, नहीं तो आज भोग में अपना भान भूला हुआ जगत् गाय को मार कर भी इन वस्तुओं को प्राप्त किये बिना नहीं छोडेगा। इतना ही नहीं, किन्तु मरी हुई गाय को पृथ्वी माता को अर्पण करनेवाले आप ही क्या जूते के बिना नंगे पैरों काम चलानेवाले थे? इस लिए यह कहना गलत नहीं होगा कि गाय को गाडनेवाले को गोहत्या का पाप लगेगा और गाय की सेवा के लिए उसका चमडा उतार कर जगत् को सौंपनेवाले को गाय को जीवन देने का पुण्य मिलेगा।]

त्वचा लोम्नाऽथ शृङ्गैर्वा वालैः क्षीरेण मेदसा।
यज्ञं वहन्ति संभूय किमस्त्यभ्यधिकं ततः॥ ११५-१४॥

[ऊपर के श्लोक में बतलायी हुई वस्तुओं के अलावा इस में रोंवों और चर्बी का उल्लेख है। कपडे की मिलों में गाडियों चर्बी खपती है और इससे आज अधर्म का पोषण होता है। मरे हुए ढोर की चर्बी अगर हम सँभाल कर के मिलवालों को देवें तो वे खुशी से लेंगे और उनके द्वारा पशुवध को मिलनेवाला उत्तेजन बंद होगा।]

सार्द्रे चर्मणि भुञ्जीत॥ ११३-२१॥

[इस श्लोक में चमडे पर बैठ कर भोजन करने का विधान किया है। आज हमें चमडे से जो घृणा है, वह हमारे पूर्वजों को न थी। यह घृणा हम भले ही रक्खें किन्तु इसमें थोडे विवेक का संचार करें। चमडे की ही वस्तु इस्तैमाल करनी हो तो मरे हुए ढोर का ही चमडा लेने का आग्रह रक्खें और उसे

पवित्र गिनें। कत्ल किये हुए ढोर के चमडे का मांसाहार के समान ही तीव्र त्याग करें क्योंकि मांसाहारी के समान ही कत्ल किये गये ढोर के चमडे को इस्तैमाल करनेवाला भी कसाई को उत्तेजन देता है।]

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ॥ १०४-७८ ॥
सब सुख देनेवाली गाय मनुष्य मात्र की माता है।
अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ॥ १०१-४५ ॥
इन्द्र कहते हैं कि गाय का दूध अमृत है।
सर्वदेवमनुष्याश्च तस्या गच्छन्ति पुत्रताम्।
तस्याः स्तनसमुद्भूतं पिबन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥ ११७-२९ ॥

गाय के स्तन में से निकले हुए उत्तम अमृत को पीनेवाले मनुष्य मात्र उसके पुत्र बनते हैं।

*धारयन्ति प्रजाश्चैताः पयसा हविषा तथा ॥ १२९-१७ ॥
गाय घी दूध दे कर मनुष्य जाति को जिला रखती है।
गावश्चान्नं संजनयन्ति लोके ॥ १०७-५२ ॥
गाय का पुत्र इस जगत् में अन्न पैदा करता है।
युगन्धराश्च गोपुत्राः सन्ति लोकस्य धारणे ॥ ११७-२० ॥

---

*मैक कौलम नामक अमेरिकन लेखक लिखता है, 'दूध के सतत उपयोग के बिना . . . हमारी (अमेरिकन लोगों की) संसार में जो शक्ति है, वह टिक नहीं सकती।' 'दूध के बिना गोरी प्रजा बचनेवाली नहीं है।' [Without the continued use of milk . . . we cannot as a nation maintain the position as a world power to which we have arisen.' 'Without milk the white race cannot survive.']

(कृषियोगमुपासते ।)

जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च ॥ १२९-१८ ॥
वहन्ति विविधान् भोगान् क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः ॥ १२९-२० ॥
नैषां शीतातपौ स्यातां सदैते कर्म कुर्वते ।
न वर्षविषयं वापि दुःखमेषां भवत्युत ॥ १०१-४० ॥

कृषियोग के उपासक तथा धुरंधर गाय का पुत्र जगत् का आधारभूत है, वह अनेक प्रकार के अनाज तथा बीज उगाता है, और भूख प्यास सहकर भार ढोता है; जाडा, गर्मी, बरसात किसीकी भी पर्वा नहीं करता ।

गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः ।
न किञ्चिद्दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ॥ १२९, ४७-४९ ॥

गोसेवक (मूक पशुओं का पक्ष करनेवाले आदमी) की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं; उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

७

गुजरात की गायें

अकबर बादशाह को दयाधर्म का बोध करानेवाले महान् गुजराती जैन साधु हीरविजयसूरि के चरित्र को लेकर देवविमल गणि ने 'हीरसौभाग्यम्' नाम का संस्कृत महाकाव्य रचा है। इसके प्रथम सर्ग में गुर्जर देश का वर्णन आता है। उसमें से नीचे के श्लोक उतारे जाते हैं:

कुत्रापि दम्यैरनुगम्यमानाः सरिद्वरायाः सखितां दधानाः।
यद्गोचरे द्रोणदुघाश्चरन्ति मूर्ताः समाज्ञा इव मण्डलस्य ॥ ६२ ॥

गुजरात वह देश है जिसके गोचरों में गंगाजी की तरह सफेद रंग की गौयें, देश की कीर्त्ति की तरह जो उजली हैं और पूरे बत्तीस सेर दूध देती हैं और जिनके पीछे बडे बडे बछडे फिरते हैं, आनन्द से चरती हैं।

गावः क्वचिद् भान्ति सुधामुधाकृत्पयः स्रवन्त्यः प्रविभाव्य वत्सान्।
यदीर्ष्यया निष्ठितनाकभाग्यैरिवावतीर्णा भुवि देवगावः ॥ ६३ ॥

बछडों को देख कर अमृत को भी मात करनेवाला दूध जिनके थन से चू रहा है, वे गायें तो कामधेनु हैं जो इस देश के लालच से मानों स्वर्ग से उतर आयी हैं।

ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभागप्रोत्तानयानोद्भवदर्तिभाजः।
सातं चरन्त्यः किमुपेत्य धात्र्यां स्वर्धेनवो यत्र विभान्ति गावः ॥६४॥

मानों, ब्रह्माण्ड के गोले की ऊपरी छत पर पैर ऊंचे और सिर नीचा कर चलते चलते थकी हुई कामधेनुएं ही पृथ्वी पर उतर आयी हैं और सुखपूर्वक चरती हैं ऐसी गायें गुजरात में हैं।

ऐसी गायें फिर देखने को मिलें इस बात की अगर कोशिश की जाय तो कैसी अच्छी बात हो?

८

अकबर की उदारता

आज जब कि हिन्दूमुसल्मान आपस में लड रहे हैं और क्षमा और सब्र का नाम तक भूल गये हैं, हिन्दू मुसल्मानों की कभी की परस्पर सहिष्णुता और उदारता की याद और उसकी चर्चा अगर हम यहां करें तो अनुचित न समझा जायगा। मुसल्मान बादशाहों में अकबर सहिष्णुता का और उदारता का नमूना था।

अकबर के पुस्तकालय में कितनी ही अच्छी पुस्तकें होंगी! जब उसकी मृत्यु के बाद उसके आगरा के किले के अन्दर के खजाने की फ़िहरिस्त तैयार की गई तो ऐसी पुस्तकों की संख्या, जो सभी हस्तलिखित थीं, जिनकी सुन्दर जिल्दें बँधी हुई थीं और जिनमें बहुतेरों में सुन्दर चित्र भी थे, २४,००० थी, जिनमें ४,००० तो फैजी की जमा की हुई पुस्तकों में से उसके मरने के बाद मँगवा ली गई थीं और जिनकी कीमत ६४,६३,७३१ रु. थी। प्रत्येक पुस्तक की कीमत औसत २७०) थी। उस पुस्तकालय के कई विभाग थे, और प्रत्येक विभाग में भी पुस्तकों की कीमत और विषय के महत्त्व के अनुसार कई और विभाग थे। गद्य, पद्य, हिन्दी, फारसी, यूनानी, काश्मीरी, अरबी सभीके अलग अलग विभाग थे।

विद्या के साथ अकबर का प्रेम इतना अधिक और उदार था कि उसकी आज्ञा के अनुसार उसके दरबार के विद्वानों ने संस्कृत के बहुत से ग्रन्थों का फारसी उल्था किया। अब्दुलकादर बदाऊनी, जो अत्यन्त कट्टर मुसलमान थे, दो और विद्वानों के साथ महाभारत के उल्था करने में लगे थे। वह अपनी कहानी यों लिखते हैं—"मेरा भाग्य ऐसा है कि मैं ऐसे काम में लगाया गया हूं। तथापि मैं अपने को यही सांत्वना देता हूं कि जो भाग में बदा है वही होता है।" अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त अथर्ववेद, हरिवंश और राजतरंगिणी का उल्था हुआ था। ताजक का उल्था मुकम्मलखां गुजराती ने और लीलावती गणित तथा नलोपाख्यान का अनुवाद फैजी ने किया।

संगीत का पृष्टपोषक होने के अतिरिक्त अकबर संगीत में स्वयं बडा गुणी था और उसने २०० से अधिक नये तर्जों को चलाया जो अबुलफजल के कथन के अनुसार सुननेवालों को आनन्दित कर देते थे।

बादशाह घर पर और सफर में बराबर गंगाजल पिया करते। "कुछ विश्वासपात्र मनुष्य गंगा के किनारे नियुक्त हैं जो नदी से पानी भर कर बरतनों के मुंह को बन्द कर के मुहर लगा देते हैं। जब दरबार आगरा या फतहपुर में होता है तब पानी सोरों से लाया जाता है। आजकल जब बादशाह पंजाब में हैं तब जल हरिद्वार से लाया जाता है। रसोईघर के लिए यमुना का अथवा पंजाब की नदियों का जल कुछ गंगाजल मिला कर काम में लाया जाता है।"

चौबीस घंटों में वे केवल एकबार खाया करते थे और हमेशा कुछ भूख रहते ही खाना छोड देते थे। यह याद रखने

योग्य बात है कि अबुलफजल जो यह सब बातें लिखा करता था स्वयं प्रायः तीन पसेरी प्रतिदिन भोजन करता था । "पहले दर्वेशों का भाग अलग कर दिया जाता है, तब बादशाह दूध और दही के साथ भोजन आरम्भ करते हैं । जब खा चुकते हैं तब प्रार्थना करते हैं ।"

पर सबसे बडी बात यह है कि अकबर एक दयालु पुरुष था । अबुलफजल कहता है—

"बादशाह को मांस से बहुत अरुचि है और वे प्रायः कहा करते हैं— 'ईश्वर ने मनुष्य के लिए बहुत प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाये हैं पर मनुष्य अपने अज्ञान और पेटूपन से जीते जन्तुओं का नाश करता है और अपने पेट को जानवरों की कबर बना देता है । यदि मैं राजा नहीं होता तो मैं तुरन्त मांस खाना छोड देता और मेरी इच्छा है कि इसे धीरे धीरे छोड दूं ।' कुछ दिनों तक उन्होंने शुक्रवार को मांस खाना छोड दिया था, तब रविवार को । और अब हर सौर मास की पहली तारीख को, फिर चन्द्र अथवा सूर्य्य ग्रहण के दिन, और रविवार को, ऐसे दिनों में भी जो दो मांस छोडनेवाले दिनों (सूफियाना) के बीच में पड जाते थे, और फिर रजब महीने के सोमवार को और तीर महीने के पर्व में और फरवरदिन के पूरे महीने में और अपने जन्म के पूरे महीने में जो आवां का महीना था मांस को छुते नहीं । फिर बादशाह का हुक्म है कि मांसवर्जन (सूफियाना) इतने दिनों तक जारी रहे जितने वर्ष की अपनी उमर हो इसलिए आदर महीने के भी कुछ दिन इसमें जोड दिये जाते थे । और अब तो सारा महीना ही "सूफियाना" अर्थात् निरामिष हो रहा है । अपनी धर्मनिष्ठा के कारण इन दिनों को वे प्रत्येक वर्ष

बढाते ही जा रहे हैं और किसी वर्ष में पांच दिन से कम नहीं बढाते ।"

अकबर ने गोवध एकदम बन्द कर दिया था । और दूसरे जानवरों का भी वध इतने दिनों बन्द रहता जो जैनों के पज्जूसण के दिनों को (सावन के अन्तिम और भाद्रपद के पहले छः छः दिन) मिलाकर प्रायः आधा वर्ष हो जाता था । हीरविजयसूरि के कहने से उसने कैदियों को और पिंजडे में बन्द चिडियों को छुडवा दिये, शिकार खेलना छोड दिया जिसको वह बहुत ही पसन्द किया करता था और डामर सरोवर में मछली मारने में भी रुकावट डाली । यह विशेष कर जानने योग्य बात है कि अकबर ने तीर्थयात्रियों से सब प्रकार के कर लेना बन्द कर दिया और कहा करता कि " जब सब रीति से की हुई पूजा एक ही के लिए है तब भक्त की किसी रीति की पूजा में बाधा डालना, उसे अपने बनानेवाले से मिलने में अडचन डालना, पाप है ।" यह वही सिद्धान्त है जो इस श्लोक में दिया हुआ है—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

अकबर ने बालविवाह बन्द कर दिया और विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाजत दी । वह इस बात पर जोर देता था कि विवाह के लिए वरकन्या की संमति और उनके पितामाता की अनुमति आवश्यक है । वह अपनी प्रजा को धर्म संबन्धी पूरी स्वतन्त्रता देता था । ' यदि कोई हिंदू बचपन में अथवा किसी अन्य प्रकार से अपनी इच्छा के प्रतिकूल मुसलमान बना लिया गया हो तो उसे स्वतन्त्रता थी कि यदि वह चाहे तो अपने पूर्वजों के धर्म में फिर चला जाय ।" " किसी आदमी के साथ

उसके धर्म के कारण हस्तक्षेप नहीं किया जाता और प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार वह जो धर्म चाहे उसमें जाने की स्वतन्त्रता थी।"

उसके कुछ सुभाषितों के साथ इसे खत्म करें—

"यह मेरा धर्म है कि सब मनुष्यों के साथ मैं सद्भाव रक्खूं। यदि वह ईश्वर के बताये पथ पर चलते हों तो मेरा हस्तक्षेप ही अनुचित होगा। और यदि ऐसा न हो तो उन्हें अज्ञान का रोग है और वे दया के पात्र हैं।"

"उदारता और परोपकार सुख और दीर्घजीवन के साधन हैं। भेड़ें जो एक या दो बच्चे प्रतिवर्ष पैदा करती हैं बहुत हैं, पर कुत्ते जो बहुत बच्चे उत्पन्न करते हैं कम ही हैं।"

"किसी ज्ञानी पुरुष से गिद्ध के दीर्घजीवन और बाज के लघुजीवन का कारण पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि गिद्ध किसी को हानि नहीं पहुँचाता और बाज दूसरों का शिकार किया करता है।"

६

अकबर के समय में गोधन

अबुलफजल लिखते हैं—

"सारे हिंदुस्थान में गाय पवित्र मानी जाती है और सन्मान पाती है। साम्राज्य के हरएक भाग में जात जात के पशु हैं, परन्तु उनमें गुजरात के उत्तम हैं। गुजरात के बैल एक दिन और एक रात में ८० कोस (१२० मील) का सफर करते हैं और तेज घोडे से भी आगे निकल जाते हैं।......किसी समय बैल की जोडी १०० मुहर में बिकती है। परन्तु साधारण दाम १०-२० मुहर है।...बाझ गायें दिन में आधा मन से ज्यादा दूध देती हैं। गाय के साधारण तौर पर १० रुपया दाम हैं। खुदावन्द के पास एक जोडी बैल की थी। उसका दाम उन्होंने ५,००० रुपया दिया था।"

अकबर के समय में दूध २५ दाम में एक मन मिलता था। उसके समय में ४० दाम का एक रुपया और ५५॥ अधसेरे का एक मन होता था। अर्थात् आजकल के संयुक्त प्रान्त के नम्बरी तौल के हिसाब से एक रुपये में नवासी सेर या सवा दो मन या एक पैसे में लगभग सवासेर दूध हुआ। एक मन घी के १०५ दाम होते थे। इस हिसाब से घी एक रुपये का २१ सेर से ज्यादा हुआ।

१०

तीनसौ बरस पहले का पिंजरापोल

कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले प्रोफेसर भाण्डारकर ने अशोक के ऊपर व्याख्यान देते हुए कहा था कि पिंजरापोल का सबसे पुराना हाल वह है जिसका वर्णन हैमिल्टन के लेख में है और जो कि सूरत शहर में १८ वीं शताब्दी के अन्त में कायम था। मेरे मित्र श्रीयुत मूलजी भीमजी बारड ने इस बात की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है कि खम्भात पिंजरापोल का सुन्दर वर्णन, जैसा कि वह तीन सौ बरसों से कुछ पहले था, उन पत्रों में पाया जाता है कि जो सीन्योर पेट्रो दलावाल नामक इटलीनिवासी यात्री ने अपने मित्र मारियो शिपानो के नाम लिखे थे। और इन पत्रों में उसकी हिंदुस्तान-यात्रा का वर्णन था। अंग्रेजी में उसका अनुवाद सन् १६६५ ई० में प्रकाशित हुआ था। वह वर्णन हमारे राष्ट्रीय जीवन की आश्चर्यजनक शृंखलाबद्धता का इतना रोचक प्रमाण हमारे सामने रखता है कि उसे यहां सविस्तार उद्धृत करने में मुझे कोई संकोच नहीं मालूम होता:—

"जिस दिन हमलोग वहां पहुँचे, उसी दिन भोजन और कुछ देर आराम कर लेने के पश्चात् हमलोग सब तरह के पक्षियों का एक प्रसिद्ध अस्पताल देखने के लिए किसीके साथ गये। जो चिडियां बीमार, लंगडी, साथियों से बिछुडी हुई या अन्य किसी प्रकार से आश्रयहीना होती हैं, वहां ध्यान से रक्खी और पाली जाती हैं तथा वे लोग जो इन

चिड़ियों की देख भाल रखते हैं सार्वजनिक भिक्षादान पर निर्भर रहते हैं । इस अस्पताल की इमारत छोटी है और बहुत सी चिड़ियों के लिए सिर्फ एक कमरा काफी होता है । जिस पर भी मैंने उस अस्पताल को तरह तरह की आश्रयार्थिनी चिड़ियों से भरा हुआ पाया । उसमें मुर्गियां, मुर्गे, कबूतर, मोर, बत्तक और छोटे पक्षी सभी थे, जो कि लंगड़े, बीमार, साथीहीन होने के कारण यहां रक्खे जाते हैं । लेकिन जब वे अच्छे हो जाते हैं, तब जंगली पक्षी तो उड़ा दिये जाते हैं और पालतू पक्षी घर में रखने के लिये किसी धार्मिक सज्जन को दे दिये जाते हैं । इस अस्पताल में जो सबसे विचत्र बात हमलोगों ने देखी वह छोटे छोटे कुछ चूहे थे—ये बेचारे बिना मां बाप के या अनाथ होने के कारण वहां पोषणार्थ रक्खे गये थे । एक वयोवृद्ध पुरुष जो चश्मा लगाये हुए था और जिसके सफेद दाढ़ी थी उन चूहों को रुई के भीतर रक्खे हुए बड़े हर्ष के साथ उनकी देखभाल करता था, वह उन्हें एक पर के सहारे दूध पिलाता था क्योंकि वे इतने छोटे बच्चे थे कि वे और कुछ खा ही न सकते थे । और जैसा कि उसने हमलोगों से कहा, वह चाहता था कि जब वे चूहे बड़े हो जायंगे तब वह उन्हें छोड़ देगा ।

"दूसरे दिन सबेरे हमलोगों ने दूसरा स्थल देखा जिसमें कि बकरी, भेड़, मेढे, मोर, मुर्गे इत्यादि पशु देखे जो कि आश्रयहीन, लँगड़े या बीमार थे । ये सब एक बड़े सहन में, जहां कि खूब शान्ति रहती थी, रक्खे जाते थे । उसी इमारत के छोटे छोटे कमरों में इन पशुओं की देखभाल रखनेवाले स्त्रीपुरुष रहते थे । इस अस्पताल से बहुत दूरी पर एक दूसरा मकान बना हुआ था जिसमें कि गाय तथा बछड़े रक्खे गये

थे। इनमें से कुछ की टांगे टूटी हुई थीं, कुछ बहुत कमजोर या दुबले हो गये थे—सबकी यहां दवाई की जाती थी। जानवरों के बीच में एक मुसल्मान चोर भी था, चोरी के दंड में जिसके दोनों हाथ काट डाले गये थे। लेकिन दयार्द्र हिन्दुओंने, यह सोच कर कि कहीं उसकी मृत्यु दुर्दशा के साथ न हो, और यह समझ कर कि वह अब अपनी रोजी कमा न सकेगा, उसे यहां ला कर रक्खा। शहर के फाटक के बाहर भी हमलोगों ने गायों, बछडों तथा बकरियों का एक बडा गिरोह देखा जो कि जनता के पैसे पर ख़ास इसी काम के लिए रक्खे गये गडरियों के द्वारा चरने के वास्ते भेजे गये थे। इनमें वह पशु थे जिनकी दशा सम्हल चुकी थी, या जो अपने मालिक से दूर इधर उधर बहक गये और भटकते फिरते थे, और वह बकरे वगैरह (गाय बछडे नहि) भी थे जिन्हें रुपये दे कर मुसल्मानों के हाथों हत्या से छुडाया गया था। इस प्रकार जो अच्छे होने के लिए रक्खे जाते हैं वह जब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाते हैं तब ऐसे नागरिकों को सौंप दिये जाते हैं जो कि उन्हें यों ही पालने में समर्थ हैं। मैंने हत्या से छुडाये जानेवाले पशुओं में गायों, बैलों और बछडों का नाम इसलिए नहीं लिया कि खम्भात शहर में गायों, बछडों या बैलों को कोई हलाल नहीं करता। हिन्दू समाज के कुलीन लोग बडी कोशिश करते हैं। सुल्तान को इसके लिए बहुत सा रुपया देते हैं। इसीलिए इनकी हत्या नहीं हुआ करती। गोबध कानून से मना है। यदि कोई मुसल्मान या अन्य कोई आदमी उन्हें काटता हुआ पाया जाता है तो उसे सख्त सजा दी जाती है। कभी कभी मृत्यु-दण्ड भी मिल जाता है।"

परिशिष्टपर्व

१

पिंजरापोलों का सुधार

मौजूदा पिंजरापोलों में कुछ का इन्तजाम, जिन्हें कमो बेश नियमित और निश्चित आमदनी है, साधारणतः अच्छी तरह होता है और वे बूढे जानवरों के लिए जिनसे कुछ कमाई नहीं हो सकती शरण बन जाते हैं। इनमें प्रायः ही देखा जाता है कि जब व्यापार मंदा होवे और चंदा पूरा न मिलता हो, उन दिनों में जानवरों को अधभूखे रहना पडता है जिससे वे मर जाया करते हैं। ऐसी हालतों में गोरक्षा करने के बदले ये गोशालायें गोवध करने लगती हैं और वह भूखों मार मार कर। कम से कम छह बार तो मैंने गोशालाओं में गायों को भूखों मरते देखा ही है। इस लिए पिंजरापोलों के लिए सबसे पहली बात तो यह है कि वे उससे अधिक जानवर कभी भूल कर भी न लेवें जितने को खिला पिला कर आराम से तब तक रख सकें, जब तक वे कुदरती मौत से न मरें।

सभी बडे पिंजरापोलों को जिन्हें कोई निश्चित आमदनी और पूँजी है मेरी समझ में तीन विभागों में बांटना चाहिए और सबका प्रबंध किसी गोविज्ञान में शिक्षित प्रबंधक के हाथ में रहना चाहिए।

१. पहले विभाग में भैंस को छोड कर गोरू जिनसे कमाई नहीं की जा सकती कुदरती मौत आने तक सुख से खिला पिला कर रक्खे जायँ।

२. दूसरा दुग्धालय विभाग जिसमें वे सब गायें जो कसाई-खाने से बचा कर लायी गयीं और दूध देने लायक हों सुख से रक्खी जायँ और व्यापारी दुग्धालय की गायों जैसे उनका हिसाब रक्खा जाय, और सभी बछडों का सावधानी से पालन किया जाय। जो बछडे सांड बनाने लायक अच्छे न होवें उन्हें बैल बनाया, और जो सांड बनाने लायक हों उन्हें सांड विभाग में रक्खा जाय, या गांववालों को उनके सांड के काम के लिए दे दिया जाय। सभी बछडियों का पालन दूध देने वाली और अच्छे बछडे पैदा करने वाली गायों के रूप में होवे। जब इन बछडों की संख्या पिंजरापोल के लिए बहुत अधिक बढ जाय तब उन्हें विश्वासी हिंदुओं को इस शर्त पर बेंचा जा सकता है कि दूध या काम न देने लायक बूढे हो जाने पर वे गोशाला को जरूर लौटा दिये जायँ।

३. तीसरे सांड विभाग में अच्छे से अच्छे सांड जिलेवालों के काम के लिए रक्खे जायँ। गोशाला के प्रबंधक की जाँची हुई सभी गायों के लिए साँड का उपयोग मुफ्त में दिया जा सकता है, और हर एक संयोग का लेखा रक्खा जाना चाहिए। यह विभाग जिले के सभी बेकार सांडों को मुफ्त में बैल बना देने का भी काम ले सकता है।

भैंसों की नस्ल सुधारने के लिए कोई खास काम करना जरूरी नहीं है। हिन्दुस्तान आज कोई ऐसा ढोर नहीं रख सकता जो दोनों काम न देवे — मादा दूध और नर काम न

देवें। साधारणतः भैंसा तो न खेत के और न गाडी खींचने के ही काम आता है और इसलिए सांड के काम के लिए रख कर बाकी पाडे बचपन में ही मार डाले जाते हैं और देश के माथे ये भारस्वरूप बने रहते हैं। हिन्दुस्तान में अधिकतर लोग कोई जानवर मारने के खिलाफ हैं और यह भी कोई अक्लमंदी नहीं कि जानवरों को पाल पोस कर स्याना होने पर मांस के लिए मारा जाय जब कि हिन्दुस्तान में इस मांस के दाम से पालने का खर्च अधिक पडता है।

हिन्दुस्तान में भैंस इस लिए है और बढती है कि गाय को बहुत कम दूध होता है और इसलिए गोरक्षा प्रचार का यह उद्देश होना चाहिए कि सभी प्रकार की गायों का दूध इतना बढाया जाय कि वे मजबूत तंदुरुस्त बछडे का पालन करने के अलावा अपना खर्च अपने दूध से ही चला सकें। जब हम इस स्थिति में पहुँच जायँगे तब भैंस की कुछ जरूरत ही नहीं रहेगी और वह अपने आप यों ही आर्थिक कारणों से नष्ट हो जायगी। आज तो हालत यह है कि किसान को बैल के लिए दो तीन गायें हैं और दूध और घी के लिए दो तीन भैंसे अलग रखनी पडती हैं। यह बहुत ही अधिक खर्च है और इसकी कोई वजह नहीं कि जो गायें बछडों के लिए रक्खी जाती हैं वेही घर के लिए सभी जरूरी घी और दूध भी न देवें। हमारे जानवरों के मांस की कुछ कीमत नहीं है और हम बैल के लिए गाय और दूध के लिए भैंस नहीं रख सकते। गाय अकेले ही दोनों काम कर सकती है, और उसे करना ही होगा। इसलिए पिंजरापोलों को गाय की उन्नति पर ही ध्यान देना चाहिए। हिन्दुस्तान में खेती बैल की माता गाय पर निर्भर

है, भैंस पर नहीं और गाय के दूध पर लोगों की तन्दुरुस्ती बनायी रक्खी जा सकती है, और उसका सुधार भी हो सकता है। एक प्रकार से भैंस तो गाय के कम दूध होने के कारण ही बीच में आ पडी है।

अगर सभी पिंजरापोलें ऊपर बताये रास्ते पर अपना प्रबन्ध करने के सचमुच में योग्य आदमियों को रक्खें तो वे हिन्दुस्तान के लिए दरअसल कुछ काम करेंगी।

विल्यम स्मिथ

[पाठक देखेंगे कि मि. स्मिथ ने मौजूदा पिंजरापोलों के ज्ञान के आधार पर यह लेख लिखा है। उन्होंने मुझे कहा था कि मैंने कितनी एक गोशालाएँ देखी हैं। उनकी राय में पिंजरापोलों को सिर्फ बूढे और लाचार जानवरों का रक्षण भर ही नहीं करना चाहिए, बल्कि गोरक्षा का और लोगों को गोरक्षा की शिक्षा देने का भी काम करना चाहिए। इस के लिए उन्हें अच्छा सा दुग्धालय और सांड विभाग होना चाहिए। इसमें मैं चर्मालय को भी जोड देता हूँ। चर्मालय जोडने के विषय में मैंने मि. स्मिथ से बातें की थीं। यह विचार उन्हें पसंद तो पडा मगर एक विषय के विशेषज्ञ होने के कारण उन्होंने उसके बाहर दखल देना उचित नहीं समझा। मि. स्मिथ के भैंस के विषय में सावधान विचार पर ध्यान देना चाहिए। हमारे ही जैसा उनमें जानवरों को मारने के खिलाफ न तो भाव हैं, न हो ही सकते हैं मगर वे यह समझते हैं कि हिन्दुस्तान में जानवरों को मारने की कोई योजना वैसे ही बेमौके होगी जैसे कि बूढे माबापों को मार डालने की किसी देश में। इसलिए उन्होंने हिन्दू संस्कारों को समझने की कोशिश की है और हिन्दू

भावों के अनुसार ही उपाय सुझाया है। मैं आशा करता हूँ कि पिंजरापोलों के प्रबन्धक मि. स्मिथ की सूचनाओं को पढ़ेंगे और अपने यहां जरूरी हेरफेर करेंगे, जो कि मैं समझता हूँ कि शुरू में बहुत कम खर्च पर किये जा सकते हैं और अखीर में बहुत लाभ देंगे।

मो० क० गांधी]

२

गांवों में ढोर सुधार

[मि. विल्यम स्मिथ का सहकार से गांवों में ढोर सुधार वाला लेख मैं नीचे देता हूँ। पिंजरापोलों के संबंध की योजना तो तुरत ही काम में लायी जा सकती है, मगर घी बनानेवाले क्षेत्र के बाहर शहर से दूर दीहात के संबंध की इस योजना को अमल में लाना उससे जरा मुश्किल होगा। मगर सच्चा सुधार तो इन गांवों से ही होना चाहिए, जो आर्थिक कठिनाईयों और लोगों के पशुपालन के अज्ञान के कारण बरबस कसाईखानों को जानवर जुटाया करते हैं। हिन्दुस्तान के कसाईखानों के ढोरों का इतिहास कोई ध्यान से देखे तो मालूम पडेगा कि टका-धर्मी लोग कसाईखानों के लिए इन्हीं दूर के गांवों से जानवर ले जाते हैं। गोसेवक बनना सहज नहीं है। सिर्फ चाहने से ही तो कोई बन ही नहीं सकता। उसे तो वकीलों, डाक्टरों और इन्जीनियरों के जैसा सीखना पडता है उनसे भी अधिक मिहनत उठानी पडती है। इसलिए जो हिन्दुस्तान की और उसके गांवों की बहबूदी चाहते हों उन्हें चुनिंदा गांवों में इसे अमल में लाने के खयाल से मि. स्मिथ की योजना गौर से पढनी चाहिए। इसे वेदवाक्य समझने की कोई बात नहीं है। जो पशुपालन या सहकार योजना को मुतलक नहीं जानते उनके लिए यह आदर्श होगा। सरकारी सहयोग विभाग के नाम से असहयोगी भी न भडकें।

अभी तो राष्ट्रीय असहयोग ही नहीं है। जब वह था, तब भी सभी सरकारी विभागों पर लागू न था। तब भी ऐसे असहयोगी थे जो सहकार-समितियों का त्याग न करते थे और अब भी कितने असहयोगी हैं जो सहकार-समितियों के कार्यकर्त्ता होते हुए भी अपने को असहयोगी कहते हैं। मगर जो सहकार समिति की सहायता लेना नहीं चाहता वह गोसेवक भी इस योजना से लाभ उठा सकता है, सहकार-समितियों की सलाह से लाभ उठा सकता है, अगर समितियां उसे खुशी से देवें, और उनसे सांड अगर मिलें तो उनका भी उपयोग कर सकता है। मुख्य बात तो किसानों को पशुपालन की शिक्षा देने की शुरूआत करने की है। प्रस्तावित योजना इसमें सहायता देगी। अगर मि. स्मिथ की योजना का ठीक ठीक अमल होवे तो उनके मतानुसार दूध में और पशु की कीमत में दुहरी बढती होगी।

मो० क० गांधी]

रेलवे स्टेशन से दूर ५०० के करीब की आबादी वाले और ५०-१०० पुख्तह उम्र की गाय भैंस वाले गांव में पशु-सुधार की योजना।

इतने बडे, ऐसे गांव में, बछडों को पिलाने से बचा हुआ सारा का सारा दूध गांववालों को कुछ समय तक आप खर्च कर लेना चाहिए।

प्रान्तीय सरकारी सहकार-विभाग के अधीन गांव के सभी ढोरवालों को ढोरसुधार सहकार-समिति खोल कर उसमें शामिल हो जाना चाहिए। हर शख्श अपने फी जानवर चार आने या किसी ऐसे ही हिसाब से हिस्सा खरीदे। इस समिति का प्रबंध ६ या ८ आदमियों की कार्यसमिति करे जिसे हिस्सेदार चुनें

और हर सदस्य को एक मत देने का अधिकार रहे । अब यह कार्यसमिति सभापति, मंत्री और खजांची चुने । सभापति तो जरूर कार्यसमिति का सदस्य होना ही चाहिए, मगर मंत्री और खजांची कोई हो सकते हैं ।

ऐसी समिति तो बेकार ही होगी, अगर खास कर शुरू में ही आमद खर्च, हिसाब किताब, बही खाते, पशुपालन, और पशुचिकित्सा इत्यादि के संबंध में उसे योग्य सलाह न मिले । इस लिए संगठन, हिसाब किताब, हिसाब की जांच वगैरह के बारे में इसे स्थानिक सहकार-विभाग के अधीन रहना चाहिए और स्थानिक कृषि और पशुविभाग उसे सलाह देते रहें । इसके बही खाते जिले की भाषा में रक्खे जाने चाहिए । जरूरत के हिसाब से यह समिति क्रमशः ये काम करेगी:

१. गांव के बछडे से बूढे तक सभी ढोरों की गिनती उनके इतिहास के साथ तैयार करना ।

२. हर ढोर के कान पर गोदने गोदना या उस पर ठप्पा मारना जिससे उसके मालिक की पहिचान होवे ।

३. स्थानीय कृषि विभाग की सहायता से हर ५० गायों पर एक अच्छे सांड के रखने, खिलाने आर देखरेख रखने का प्रबंध करना और हर सांड के हर एक संयोग का सावधानी से लेखा रखना ।

४. स्थानीय कृषि विभाग के जरिये या उसकी पसंदगी से अच्छे सांड मँगाने का प्रबंध करना और सार्वजनिक सूचना देना कि समिति के सदस्यों को उनका उपयोग मुफ्त में करने दिया जायगा, और अगर मुनासिब समझा जाय तो फीस देने पर, दूसरोंको भी ।

५. स्थानीय पशु विभाग के साथ ऐसा प्रबंध कर लेना कि गांव की हर पचास बछड़ियों और गायों पर एक चुनिंदा बछडे को सांड बनाने के लिए छोड कर बाकी सभी बछडों को बैल बनाया जाय। इस बछडे को समिति उसके मालिक से खरीद ले और उपर बताये हुवे सांड के साथ खिला पिला कर रक्खे।

६. स्थानीय कृषि विभाग की सलाह से, सहकार के सिद्धान्तानुसार, सदस्यों के सभी ढोरों के काम लायक काफी चारा पैदा करने, इकट्ठा करने और बचा रखने की योजना तैयार करना।

७. दूध खाता खोलना, जिससे गांव की अच्छी गायों और भैंसों के दूध का सच्चा हिसाब रहे। इसके लिए अच्छी गायें और भैंसें चुन ली जायँ और विश्वासी कार्यकर्ता हफ्ते में एक दिन जाकर उनका दूध तौल लिया करें और उसे ७ से गुना कर लें। जबतक गाय दूध देती रहेगी तब तक के सारे दूध का बहुत कुछ सही अंदाजा यों लगाया जा सकता है।

पूँजी का हिसाब जोडने में यह बात मान ली गयी है कि स्थानीय सरकार आधे दाम पर सांड देगी जैसा कि पंजाब में होता है या दूसरी सरकारें करती हैं। स्थानीय कृषि और पशु विभाग की सहायता से यह समिति सहज ही चुन सकेगी कि किन किन बछडों को सांड बनाना चाहिए और किन को बैल।

गांव में भैंस की उन्नति के लिए कुछ खास काम करने की जरूरत नहीं है। इसके कारण पांजरापोलों वाली योजना में मैं बता चुका हूँ। गांव के भैंसवालों को सहकार–समिति में शामिल होने का और धीरे धीरे भैंस को हटा कर गाय रखने का

उत्तेजन देना चाहिए क्योंकि सावधानी से पालन करने पर गाय का दूध बढ गया होगा। पीछे जब समिति को उसके सदस्यों का उबरता दूध खपाने का भार उठाना पडे तब उसे गाय और भैंस दोनों का दूध खपाना चाहिए।

शुरू का (पूँजी का) खर्च

	रु.
दो सांड, १७५) आधे दाम की दर से	३५०)
गोदना की कलें	९०)
सांड बनाने के लिए एक बछडा	६०)
दूध तौलने की कल	१५०)
दफ्तर का सामान	५०)
	७००

सालाना खर्च

३ सांडों का खुराक खर्च	३७०)
१ नौकर का मुशाहरा	१५०)
सांडों के लिए गोठे का किराया	६०)
दफ्तर का किराया	५०)
मुतफरकात	५०)
जानवरों का मरना वगैरह आकस्मिक घटनाएँ	१००)
दवाएँ	२०)
पूँजी पर सूद	५०)
	८५०)

आमदनी का हिसाब

खाद की बिक्री	४०)
बाहरवालों से सांड की फीस	१०)
	५०)
सालाना खर्च	८००)

पूँजी इकट्ठा करना कुछ मुश्किल नहीं होना चाहिए। कार्य-समिति के सदस्यों की जामिन पर भरसक शायद सहकारी बंक कर्ज दे देगा।

सालाना चालू खर्च के लिए यह समिति सरकार से ४००) की सहायता मांग सकती है, और बाकी ४००) के लिए दानी सज्जनों से चंदा मांग सकती है और हर सदस्य से कोई दो आने फी ढोर फी महीने चंदा मांग सकती है। गांव में अगर गिने गिनाये ३०० ढोर होवें तो इस हिसाब से बाकी ४००) सहज ही बसूल हो जायँगे।

अगर कोई सहकार-समिति इस तरीके पर ठिकाने से चलाई जाय तो मैं समझता हूँ कि तीन पुश्त में यानी कोई दश साल के अंदर अंदर ढोर का और उसके दूध का दाम दुगुना हो जाय।

३

ढोरों का चारा

(मि. गेलेट्टी के पत्र से उद्धृत)

१

जब लोम्बर्डी में धान तीन साल में एक साल और पांच साल में दो साल बोया जाता है तब धान का खेत तीन या पांच हिस्सों में बंट जाता है और प्रति साल $\frac{२}{३}$ या $\frac{३}{५}$ हिस्सा खेत का दूसरी फसल उगाने के लिए काम में लिया जाता है और बहुतायत से उसमें उत्तम प्रकार का घास और ओट ही, जिसका कि इटली में ढोरों को खिलाने में ही उपयोग किया जाता है, बोये जाते हैं। इससे धान के खेत के एक बडे हिस्से का ढोरों के लिए चारा उत्पन्न करने में ही उपयोग किया जाता है और इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि लोम्बार्डी के हल जोतनेवाले बैल भारत के छोटे भूखों मरनेवाले बैलों के बनिस्बत वजन में चारगुने और चिकने, संतुष्ट और मोटे ताजे होते हैं। और लोम्बार्डी की औसत दर्जे की गाय भारत की गायों के मुकाबले में कितना गुना अधिक और अच्छा दूध देती है यह कहता हुवा मैं डर जाता हूँ। कुछ दिन पहले जब मैं मिलान के नजदीक आये हुए केव स्टेबिलिनी के धान के खेत

पर गया था उस समय वह मुझे अपनी गाय दिखलाने के लिए ही अधिक आतुर दिखाई दिया था और उसने कहा था कि धान के बनिस्बत उससे उसे कहीं अधिक आमदनी होती थी। वह मिलान शहर को अपना दूध, मक्खन, मलाई और पनीर आदि भेजता है। बंगाल के धान के खेतों के कृषक के पास कलकत्ते के बाजार में भेजने के लिए न दूध होता है, न मलाई, न मक्खन और न घी। गाय से उत्पन्न इन शुद्ध पदार्थों की लोग उन्हें खुशी से अच्छी कीमत दे सकते हैं। केव स्टेबिलिनी की गायों को केवल उत्तम घास और अनाज ही नहीं मिलता था परन्तु उनके रहने के लिए भी महल से बाडे बनाये गये थे और दूध निकालने के और सफाई के नये से नये तरीकों का उपयोग किया जाता था। जहां गाय कीमती समझी जाती है वहां उसके लिए घास और अनाज बोया जाता है उसको रखने के लिए महल से गो-गृह बनाये जाते हैं। यहां तो केवल वह सूखे आदर की ही वस्तु है। उन्हें ऐसी जमीनों में छोड दिया जाता है जिसे गलत तौर पर भारत का चरागाह कहा जाता है पर जिसे भूखमरागाह कहना चाहिए। भारत को ऐसी अत्याचार और रोग की उत्पत्ति की जगहों को मीटा देना चाहिए और हरएक भारतीय को अपनी जमीन का दो तिहाई हिस्सा या ३/४ हिस्सा ढोरों के लिए घास उगाने को रख छोडना चाहिए।

मैं इस बात का यकीन दिलाता हूं कि इससे उसे कुछ भी नुकसान न होगा। शहरों के नजदीक की जगहों में दूध की धान के बनिस्बत अधिक कीमत होती है और वह अच्छा खुराक भी है। परन्तु इस बात को एक ओर छोड़ दें तो भी

बारी बारी से बोया गया और खाद पड़ा हुआ धान खादरहित और एक ही जगह में बोये गये धान के बनिस्बत दुगुना या तिगुना उत्पन्न होता है। गंगा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के सिंघाड़ों के मुकाबले में धान उत्पन्न करने के लिए लोंम्बार्डी की जमीन और आबोहवा मेरे खयाल में कोई अच्छी नहीं है और न शायद वह उसके बराबर ही है। जब लोम्बार्डी में काफी गरमी पड़ती है तब यह मोसम इतने थोड़े दिन के लिए रहता है कि एक वर्ष की फसल इकट्ठी करने में किसानों को बड़ी मुश्किल पड़ती है। परन्तु उत्पन्न कितना होता है? उत्तर इटली के औसत उत्पन्न के सरकारी अंकों के अनुसार १ हेक्टेर में ४५ क्वीण्टल अर्थात् ४½ टन धान होता है। इस हिसाब से एक एकड़ में करीब दो टन उत्पन्न होता है। भारत के बहुत से विभागों में उत्पत्ति के सरकारी अंक प्रति एकड़ १,५०० पौंड से कहीं नीचे है। स्वयं मेरे गंजाम के जिले में जहां १० लाख एकड़ जमीन जोती जाती है और जहां धान के सिवा और कुछ भी नहीं दिखाई देता है वहां भी १,२०० पौंड धान प्रति एकड़ उत्पन्न होता है। यदि हम उसे घटा कर ४,००,००० एकड़ अच्छी खाद डाली हुई और साफ की हुई जमीन में ही दूसरी फसलों के साथ बारी बारी से धान बोवें और प्रति एकड़ १,२०० पौंड के बदले ४,००० पौंड फसल उत्पन्न करें, जैसा कि इटली में किया जाता है, तो ४,००,००० एकड़ जमीन से ही १०,००,००० एकड़ के बनिस्बत एकतिहाई धान अधिक उत्पन्न होगा और ६,००,००० एकड़ जमीन बची रहेगी, जिसमें हम ढोरों के लिए घास दाना और मनुष्यों के लिए मका गेहूं वगैरह उत्पन्न कर सकेंगे।

२

थोडी जमीन : मेरे पिता के पास ११ खेत थे। सबसे बडा १२० एकड का और छोटा ४ एकड का था। चार एकड के खेत पर से भी बारी बारी से उसी प्रकार फसल ली जाती थी जिस प्रकार की १२० एकड के खेत पर से ली जाती थी। एक एकड में गेहूं, एक एकड में मका और २ एकड में घास बारी बारी से बोया जाता था और आपको उत्तर देने के लिए मैं इसी बात को पेश करता हूं। थोडी जमीन में भी बारी बारी से फसल ली जा सकती है और ली जानी चाहिए। हमारे छोटे किसान के पास एक ही जोड बैल थे परन्तु वह उसें बडे ध्यान से खिलाता पिलाता था। उसी चार एकड सूखी जमीन पर वह अपनी स्त्री और दो तीन बच्चों के साथ गुजारा कर सकता था। वह स्थूल रूप से आराम में भी रहता था क्योंकि मेरे पिता कहा करते थे कि उसका छोटा सा खेत एक बगीचा था, उसका एक एक इंच उसके अपने पसीने से फलद्रूप बना था क्योंकि वही तो उत्तम में उत्तम खाद है। उसेका रसोईघर का एक छोटा सा बगीचा भी था, उसके खेत में आलीव के वृक्ष थे और उस पर अंगूर की वेलें चढी हुई थी, उसमें अंजीर और चेरी के वृक्ष भी थे। उसकी स्त्री जाडे में उसके लिए कातती थी और कपडे बुनती थी और गरमी के दिनों में रेशम के कीडे पालती थी। उसने कुछ मधुमक्षिकाओं के छत्ते भी पाल रक्खे थे और मोसम बीत आने पर वह अपने गाडी बैलों को किराये पर भी ले जाता था। उसने भेड, सूअर और पक्षियों को पाल रक्खा था।

१२० एकड के खेत को ४ भाइयों का एक अविभक्त कुटुम्ब अपनी स्त्रियें, बच्चे और बूढों के साथ जोतता था। सब मिला कर वे कोई ४० से ५० मनुष्य होंगे। वह खेत उससे ३० गुना बडा था परन्तु एक के बदले उसमें ३० बैलो की जोड का उपयोग नहीं किया जाता था। उनके पास बैलों की आठ जोड थीं। वे उसे न ३० गुना खाद ही देते थे न उसमें ३० गुना पसीना ही बहाते थे। उसमें पैदाइश भी ३० गुना नहीं होती थी। न गेहूं, न मका या घास, न हाथकता सूत न कपडे वे ३० गुना पैदा कर सकते थे। कोई २० साल तक की इन खेतों की हरएक की पैदावारी का मुझे ज्ञान है। हम सब चीजों का पूरा पूरा और ठीक ठीक हिसाब रखते थे क्योंकि अण्डे, फल और कपडों से ले कर सभी चीजों में हमारा आधा हिस्सा होता था और आसामी का आधा। हमारे आधे हिस्से में से हमें बडे बडे टैक्स देने होते थे, मकान की मरम्मत करानी होती थी और ढोर, औजार और रसायनिक खाद की आधी कीमत भी देनी होती थी। मेरे पिता की मृत्यु हो जाने पर मुझे उन्हें बेच देना पडा और मैंने उसकी कीमत निकालने के लिए हरएक खेत से हमें जो शुद्ध आमदनी होती थी उसको २५ गुना कर दिया। मुझे याद है कि मैंने १२० एकड खेत की कीमत ६०,००० लायर ठहराई थी और ४ एकड खेत की ६,०००। अर्थात् छोटे खेत पर हमें १२० एकड के खेत के बनिस्बत एकड पर ३ गुना अधिक उत्पन्न होता था। कीमत के इन अंको का अर्थ यह है कि खेत के मालिक को २,४०० और २४० लायर की शुद्ध आमदनी होती थी। आसामी का हिस्सा तो हमारे हिस्से के दुगुने से भी

अधिक होता था क्यों कि उन्हें टैक्स और मरम्मत इत्यादि में कोई खर्च नहीं करना पडता। इसलिए ४ एकड के खेत पर काम करनेवाला आसामी अपने खेत से ६०० लायर पैदा करता था और रेशम के कीडे, गाडीबैल के किराये का और कताई और बुनाई का नफा अलाहदा होता था। शायद उसकी आमदनी ९०० लायर थी जो ६००) साल के बराबर होती है अर्थात् ५०) मासिक होते हैं। वह जमीन समुद्र की सतह से १,००० फीट ऊंची साधारण जमीन थी। और वह इसीलिए कीमती बनी थी क्योंकि मनुष्य और जानवर की मिहनत ने उसे वैसी बनायी थी।

आपके भारत में भी जिनके पास थोडी जमीन है वे उस जमीन में अपना और अपने अच्छे जानवरों का पसीना डाले, वे रेशम के कीडे पाले, गाडी किराये पर ले जाय, रसोईघर के लिए बाग बनावें, फल के वृक्ष बोवें और काते बुने और अपनी आधी जमीन अपने ढोरों के घास के लिए सुरक्षित रखे। उससे किसान उन्नति कर सकेगा और उसके ढोर भी पुष्ट होंगे। यदि जमीन ४ एकड से भी कम हो और यहां वहां बंटी हुई हो तो अधभूखे ढोरों को रखने में वह गलती करेगा। हल के बजाय जापानियों की तरह उसे अपने हाथ से गेती से ही अपना खेत साफ कर लेना चाहिए।

मेरा सारा मतलब यह है कि यदि वह ढोर रखे भी तो वह उन्हें अपने बच्चों की तरह रखे और इस बात पर ध्यान रखे कि उन्हें रोजाना उनकी पुरी खुराक मिल जाती है या नहीं। यह तभी होगा जब कि वे अपनी कम से कम आधी जमीन घास उगाने के लिए रख छोडेंगे। $\frac{3}{5}$ जमीन रखे तो और भी

अच्छा हो । और जब वह उस जमीन में फिर अनाज बोवेगा तो ३ गुना अनाज पैदा होगा और इस प्रकार कम जमीन बोने के कारण अनाज की पैदावारी में कोई कमी न होगी बल्कि उससे उसमें वृद्धि ही होगी ।

बारी बारी से फसल लेने के मार्ग में भारत की गरीबी के कारण कोई बाधा नहीं उपस्थित होती है । बारी बारी से फसल लेने में स्थिर फसल के बनिस्बत कोई अधिक खर्च नहीं होता है । जावा में आम्बोक के जर्ये डच सरकार ने बारी बारी से धान की फसल लेना लोगों पर अनिवार्य कर दिया । उनके राज्यकाल में जावा की मर्दुमशुमारी २० लाख से ३ करोड के लगभग हो गई है और उसीके साथ उसी परिमाण से चावल और सक्कर के खेत भी बढ गये हैं । यह परिवर्तन कोई पूंजी लगा कर नहीं किया गया था परन्तु एक बुद्धिमान् सरकार ने शक्ति का प्रयोग कर के किया था । भारत में प्रचार करने के लिए और लोगों को काम में लगाने के लिए आम्बोक का प्रयोग करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । हम जबरदस्ती नहीं करना चाहते हैं परन्तु उनमें विश्वास उत्पन्न करना चाहते हैं । यहां मेरी आशा तो यह है कि नेतावर्ग के लोगों को दूसरे लोगों को इस विषय में समझाना चाहिए और आपको, नेतावर्ग के आध्यात्मिक नेता को, तो सबसे प्रथम हल को हाथ लगाना चाहिए । आपकी सहायता से बहुत कुछ हो सकेगा । दस करोड ढोर आपसे मूक प्रार्थना कर रहे हैं ।